संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
॥ ऋषि प्रसाद ॥
हिन्दी
ूज्यश्री का अवतरण दिवस
२५ अप्रैल
सिद्ध रूप में स्नेह बरसाते साँई
शिशु रूप में साँई
साधनाकाल में साँई
बाल रूप में साँई
चैत वद छः उन्नीस अठानवे, आसुमल अवतरित आँगने ॥
माँ मन में उमड़ा सुख सागर, द्वार पै आया एक सौदागर ।
लाया एक अति सुन्दर झूला, देख पिता मन हर्ष से फूला ॥
सभी चकित ईश्वर की माया, उचित समय पर कैसे आया ।
ईश्वर की ये लीला भारी, बालक है कोई चमत्कारी ॥

वर्ष : १०
अंक : ८८
९ अप्रैल २०००
सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा
मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)

विदेशों में

(१) वार्षिक : US $ 25
(२) पंचवार्षिक : US $ 100
(३) आजीवन : US $ 250

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'ऋषि प्रसाद' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद सद्गुरुदेव संत श्री आसारामजी बापू का ५९वाँ जन्म-महोत्सव

२५ अप्रैल २०००

पूज्यश्री के जन्म के पहले अज्ञात सौदागर एक शाही झूला अनुनय-विनय करके दे गया, बाद में पूज्यश्री अवतरित हुए। नाम रखा गया आसुमल। **'यह तो महान् संत बनेगा, लोगों का उद्धार करेगा...'** ऐसी भविष्यवाणी कुलगुरु ने की। तीन वर्ष की उम्र में बालक आसुमल ने चौथी कक्षा में पढ़नेवाले बच्चों के बीच कविता सुनाकर मास्टर एवं क्लास को चकित कर दिया।

आठ-दस वर्ष की उम्र में ऋद्धि-सिद्धियाँ अनजाने में आविर्भूत हो जाया करती थीं। २२ वर्ष की उम्र तक भिन्न-भिन्न आध्यात्मिक यात्राएँ कीं और कुछ उपलब्धियाँ हासिल कीं। वात्सल्यमयी माँ महँगीबा का दुलार, घर पर ही रखने के लिए रिश्तेदारों की पुरजोर कोशिश एवं नवविवाहिता धर्मपत्नी श्री लक्ष्मीदेवी का त्यागपूर्ण अनुराग भी उनको अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए गृहत्याग से रोक न सका।

गिरि-गुफाओं, कन्दराओं को छानते हुए, कंटकीले एवं पथरीले मार्गों पर पैदल यात्रा करते हुए, अनेक साधु-संतों का सम्पर्क करते हुए आखिर इसी जीवन में जीवनदाता से एकाकार बने हुए आत्म-साक्षात्कारी ब्रह्मवेत्ता पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के पास नैनीताल के अरण्य में वे पहुँच ही गये।

आध्यात्मिक यात्राओं एवं कसौटियों में खरे उतरे। साधना की विभिन्न घाटियों को पार करते हुए संवत् २०२१ आश्विन शुक्ल पक्ष द्वितीया को उन्होंने अपना परम ध्येय हासिल कर लिया... परमात्म-साक्षात्कार कर लिया।

तमाम विघ्न-बाधाओं, प्रलोभनों एवं ईर्ष्यालुओं की ईर्ष्याएँ, निन्दक व जलनेवालों की अफवाहें उन्हें आत्मसुख से, प्रभु-प्यालियाँ बाँटने के पवित्र कार्य से रोक न सकीं। उनके ज्ञानालोक से केवल भारत ही नहीं वरन् पूरे विश्व के मानव लाभान्वित हो रहे हैं। उन्हीं विश्ववंदनीय संत श्री आसारामजी महाराज का ५९वाँ जन्मदिवस चैत्र कृष्ण षष्ठी संवत् २०५६ तदनुसार २५ अप्रैल सन् २००० के दिन है।

पूज्यश्री के इस पावन अवतरण दिवस के उपलक्ष्य में गरीबों को अन्न-वितरण, कारावास में ऑडियो-वीडियो सत्संग तथा **'योगयात्रा'**, **'मन को सीख'**, **'नशे से सावधान'** जैसी पुस्तकें बाँटकर कैदी भाई अपराधी वृत्तियों से ऊपर उठकर उत्तम नागरिक बनें ऐसा प्रयास पूज्य बापू के लाडले हम सभी साधकों को विशेष करना चाहिए। बच्चों में साखी, निबंध-स्पर्धा और साधकों की संकीर्तनयात्रा, बाल संकीर्तनयात्रा, कन्या संकीर्तनयात्रा एवं सामूहिक संकीर्तनयात्रा करते हुए वातावरण में हरिनाम का पावन गुंजन गुंजाएँ।

पूज्य गुरुदेव के जन्म-महोत्सव के निमित्त सत्संग व प्रीतिभोजन, बस अड्डों और रेलवे स्टेशनों पर सत्साहित्य एवं छाछ व शर्बत के प्याऊ एवं सुवाक्यों के स्टीकर आदि लगाकर विभिन्न कार्यक्रमों के रूप में उत्तम व्यक्ति सेवा खोज ही लेते हैं, मध्यम व्यक्ति संकेत पाकर सेवा करते हैं, तीसरे नम्बर के व्यक्ति आज्ञा पाकर सेवा में संलग्न होते हैं और चौथे नम्बर के लोग जी चुराते हैं सेवाओं से।

भगवान व संत के दैवी कार्य में साझेदार होनेवाले देर-सबेर भगवान व संत के दैवी अनुभव में भी साझेदार हो जाते हैं।

नोट : इस पावन अवसर पर विद्यार्थी बालकों में बाँटने के लिए कॉपियाँ (नोटबुक्स) विशेष तौर पर तैयार की गई हैं। बाँटने के लिए ये कॉपियाँ, स्टीकर व पुस्तकें जो पंजीकृत समितियाँ जितनी खरीदेंगी उन्हें आश्रम की ओर से उतनी ही दूसरी ये वस्तुएँ बाँटने के लिए निःशुल्क दी जायेंगी।

ज्ञान की सात भूमिकाएँ

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

[गतांक का शेष]

चतुर्थ भूमिका में पहुँचे हुए ब्रह्मवेत्ता की आत्मविश्रांति बनी रही तो वे साढ़े चार भूमिका को उपलब्ध होते हैं। ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरुष फिर अपने आत्म-खजाने को बाँटने के लिए जगत में निकल पड़ते हैं। ऐसे सद्गुरु को ब्रह्म का भी ज्ञान होता है और जगत का भी। जैसे कोई दुभाषिया हो और हिन्दी-गुजराती दोनों भाषाएँ जानता हो। वह जब हिन्दी में बोलता है तब गुजराती भाषा का ज्ञान उसका छिपा हुआ होता है और जब गुजराती भाषा में बोलता है तो हिन्दी भाषा का उसका ज्ञान छिपा हुआ होता है। ऐसे ही जब ज्ञानी व्यवहार करते हैं तो परमार्थ का अनुभव उनके साथ होता है। जैसे कोई गुजराती हो और हिन्दी बोले तो हिन्दी बोलते-बोलते कुछ शब्द गुजराती के आ ही जाते हैं, वैसे ही जगत के व्यवहार करते हुए भी ज्ञानी की असली भूमिका कभी-कभार अभिव्यक्त हो ही जाती है। साधारण संसारी की नाईं रहते हुए भी उनकी परमार्थ की अनुभूतियाँ छलक पड़ती हैं, उनका संतत्व छुपाये भी नहीं छुपता।

५. असंसक्ति : चौथी भूमिका को प्राप्त हुए महापुरुष को यदि निवृत्ति में अधिक प्रीति होती है और वे एकान्त में ध्यानमग्न रहते हैं तो उनकी फिर पाँचवीं भूमिका 'असंसक्ति' आती है। उनके चित्त में नित्य परमानंद और नित्य अपरोक्ष ब्रह्मात्मभाव का अनुभव होता रहता है। चार भूमिकाओं के फलस्वरूप जो शुद्ध विभूति है, उसका नाम 'असंसक्ति' है। जैसे सोते हुए इन्सान के लिए मच्छरों की भनभनाहट सुनी-अनसुनी होती है, ऐसे ही 'असंसक्ति' में पहुँचे हुए महापुरुष के लिए जगत की 'तू-तू... मैं-मैं...', लाभ-हानि सब सुना-अनसुना हो जाता है।

६. पदार्थभावनी : दृश्य का विस्मरण और बाहर के नाना प्रकार के पदार्थों के तुच्छ भासने का नाम 'पदार्थभावनी' है। यह छठवीं भूमिका है। इस भूमिका में पदार्थ मात्र की ओर जब कोई अन्य व्यक्ति इंगित करता है तब भी प्रयत्न करने पर उसकी प्रतीति होती है। आत्मविश्रांति की वजह से बाह्य एवं आंतरिक पदार्थों की अभावना हो जाती है। कोई मुँह में अन्न का ग्रास रखता है, तब कहीं वे खाते हैं- ऐसी यह छठवीं भूमिका है।

फिर वे महापुरुष ज्यों-ज्यों ज्ञान में गहरे उतरते जायेंगे, त्यों-त्यों लोगों की, जगत की पहचान भूलते जायेंगे। तत्त्वज्ञान की इतनी गहराई होती है कि वहाँ नामरूप की सत्यता ही मिट जाती है।

घाटवाले बाबा का कहना है : ''भगवान श्रीकृष्ण की चौथी भूमिका थी इसलिए उनको बाह्य जगत का ज्ञान भी था और ब्रह्मज्ञान भी था। श्रीरामजी की चौथी भूमिका थी। जड़भरत की पाँचवीं भूमिका थी। जब कभी जहाँ कहीं चल दिये तो चल दिये। पता भी नहीं चलता था कि कहाँ जा रहे हैं। ऋषभदेव छठवीं भूमिका में थे। उन्हें अपने शरीर का भी भान नहीं रहता था। इसीलिए वे एक बार ऐसे वन में सशरीर प्रवेश कर गये जिसमें आग लगी थी और उनका शरीर वहीं शांत हो गया, स्वयं ब्रह्म में लीन हो गये।''

यह है छठवीं भूमिका।

७. तुर्या : सभी छः भूमिकाएँ जहाँ एकता को

प्राप्त हों, उसका नाम 'तुर्या' है। प्रथम तीन भूमिकाएँ जगत की जाग्रत अवस्था में हैं। चौथी, पाँचवीं, छठवीं एवं सातवीं जीवन्मुक्त की अवस्थाएँ हैं। इन सातों भूमिकाओं से परे विदेहमुक्ति है। उसे 'तुरीयातीत' पद कहते हैं।

पहली भूमिका : यूँ मान लो कि दूर से दरिया की ठंडी हवाएँ आती प्रतीत हो रही हैं।

दूसरी भूमिका : आप दरिया के किनारे पहुँचे हैं।

तीसरी भूमिका : आपके पैरों को दरिया का पानी छू रहा है।

चौथी भूमिका : आप कमर तक दरिया में पहुँच गये हैं। अब गर्म हवा आप पर प्रभाव नहीं डालेगी। शरीर को भी पानी छू रहा है और आस-पास भी ठंडी लहरें उठ रही हैं। लेकिन आप दरिया में भी हैं और बाहर भी हैं।

पाँचवीं भूमिका : छाती तक, गले तक आप दरिया में आ गये।

छठवीं भूमिका : जल आपकी आँखों को छू रहा है, बाहर का जगत दिखता नहीं। पलकों तक पानी आ गया। कोशिश करने पर बाहर का जगत दिखता है।

सातवीं भूमिका : आप दरिया में पूरी तरह से डूब गये। ऐसी अवस्था तो कभी-कभी हजारों-लाखों वर्षों में किसी महापुरुष की होती है।

कई वर्षों के बाद चौथी भूमिकावाले ब्रह्मज्ञानी महापुरुष पैदा होते हैं। करोड़ों में कोई विरला ऐसी चौथी भूमिका तक पहुँचा हुआ मिलता है। कोई उन्हें 'महावीर' कह देते हैं तो कोई 'भगवान' कहते हैं, कोई उन्हें 'अवतारी' कहते हैं तो कोई 'ब्रह्म' कहते हैं और कोई 'तारणहार' कहते हैं। कभी उनका कबीर नाम पड़ा तो कभी रमण महर्षि... कभी रामतीर्थ नाम पड़ा तो कभी शंकराचार्य... कभी भगवान कृष्ण नाम पड़ा तो कभी भगवान बुद्ध... लेकिन ज्ञान में सबकी एकता होती है। चौथी भूमिका में आत्म-साक्षात्कार हो जाता है। फिर ऐसे महापुरुष उसके विशेष आनंद में पाँचवीं-छठवीं भूमिका में रहें या लोक-संपर्क में अपना समय लगायें, उनकी मौज है। जो चार-साढ़े चार भूमिका में रहते हैं, उनके द्वारा लोककल्याण के काम बहुत ज्यादा होते हैं। इसीलिये वे लोग प्रसिद्ध होते हैं और जो पाँचवीं-छठवीं भूमिका में चले जाते हैं, वे प्रसिद्ध नहीं होते लेकिन मुक्ति सबकी एक जैसी होती है।

इन परमात्म-प्राप्ति की सप्त भूमिकाओं को जो श्रद्धा-भक्ति से पढ़ता व सुनता है, उसके पापों का क्षय होता है और वह अक्षय पुण्य को पाता है।

(समाप्त)

*

'ऋषि प्रसाद' स्वर्णपदक प्रतियोगिता

'ऋषि प्रसाद स्वर्णपदक प्रतियोगिता' में उत्साह से संलग्न सेवाधारियों में से पहले दस जिन सेवाधारियों की सदस्य संख्या वर्त्तमान में अधिकतम चल रही है उन भाग्यशालियों के नाम निम्नानुसार हैं:

क्रम	नाम	शहर
१	श्रीमती जया कृपलानी	भोपाल
२	श्री वजुभाई ढोलरिया	सूरत
३	श्री त्रिलोक सिंह	हिसार
४	श्री विमल के. हिंगु	जेतपुर
५	श्री महेशचंद्र शर्मा	कलकत्ता
६	श्री अतुल बालुभाई विठलानी	राजकोट
७	श्री दिनेशभाई डी. जोशी	अमदावाद
८	श्री वृंदावन गुप्ता	दिल्ली
९	कुमारी नूतन यादव	जलगाँव
१०	श्री राजेश जालान	बिलासपुर

...तो आएँ... देर न करें... अभी भी समय है। अभी तीन महीने बाकी हैं। आप भी इस प्रतियोगिता में सहभागी होकर दैवी कार्य में जुट जायें और आज ही अपना सेवाधारी क्रमांक और रसीद बुकें 'ऋषि प्रसाद' मुख्यालय, अमदावाद से प्राप्त करें।

नोट : इस प्रतियोगिता में सेवाधारी द्वारा बनाई गयी एक आजीवन सदस्यता दो वार्षिक सदस्यता के बराबर मानी जायेगी।

सब दुःखों से सदा के लिए मुक्ति

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

असंभव को संभव करने की बेवकूफी छोड़ देना चाहिये और जो संभव है उसको करने में लग जाना चाहिए। शरीर एवं संसार की वस्तुओं को सदा सँभाले रखना असंभव है अतःउसमें से प्रीति हटा लो। मित्रों को, कुटुम्बियों को, गहने-गाँठों को साथ ले जाना असंभव है अतः उसमें से आसक्ति हटा लो। संसार को अपने कहने में चलाना असंभव है लेकिन मन को अपने कहने में चलाना संभव है। दुनिया को बदलना असंभव है लेकिन अपने विचारों को बदलना संभव है। कभी दुःख न आये ऐसा बनना असंभव है लेकिन दुःख कभी चोट न करे ऐसा बनना संभव है। कभी सुख चला न जाए ऐसी अवस्था आना असंभव है लेकिन सुख चले जाने पर भी दुःख की चोट न लगे, ऐसा चित्त बनाना संभव है। अतः जो संभव है उसे कर लेना चाहिए और जो असंभव है उससे टक्कर लेने की जरूरत क्या है ?

एक बालक परीक्षा में लिखकर आ गया कि 'मध्य प्रदेश की राजधानी इन्दौर है।' घर आकर उसे ध्यान आया कि, 'हाय रे हाय ! मैं तो गलत लिखकर आ गया। मध्य प्रदेश की राजधानी तो भोपाल है।'

वह नारियल, तेल व सिंदूर लेकर हनुमानजी के पास गया एवं कहने लगा : ''हे हनुमानजी ! एक दिन के लिए ही सही, मध्य प्रदेश की राजधानी इन्दौर बना दो।''

अब उसके सिंदूर, तेल व एक नारियल से मध्य प्रदेश की राजधानी इन्दौर हो जायेगी क्या ? एक नारियल तो क्या, पूरी एक ट्रक भरकर नारियल रख दे लेकिन यह असंभव बात है कि एक दिन के लिए राजधानी इन्दौर हो जाये। अतः जो असंभव है उसका आग्रह छोड़ दो एवं जो संभव है उस कार्य को प्रेम से करो।

बाहर के मित्र को सदा साथ रखना संभव नहीं है लेकिन अंदर के मित्र (परमात्मा) का सदा स्मरण करना एवं उसे पहचानना संभव है। बाहर के पति-पत्नी, परिवार, शरीर को साथ ले जाना संभव नहीं है लेकिन मृत्यु के बाद भी जिस साथी का साथ नहीं छूटता उस साथी के साथ का ज्ञान हो जाना, उस साथी से प्रीति हो जाना- यह संभव है।

एक होती है वासना, जो हमें असंभव को संभव करने में लगाती है। संसार में सदा सुखी रहना असंभव है लेकिन आदमी संसार में सदा सुखी रहने के लिए मेहनत करता रहता है। संसार में सदा संयोग बनाये रखना असंभव है लेकिन आदमी सदा संबंध बनाये रखना चाहता है कि रुपये चले न जायें, मित्र रूठ न जायें, देह मर न जाये... लेकिन देह मरती है, मित्र रूठते हैं, पैसे जाते हैं या पैसे को छोड़कर पैसेवाला चला जाता है। जो असंभव को संभव करने में लगे वह है वासना का वेग। उस वासना को भगवत्प्रीति में बदल दो।

एक होती है वासना, दूसरी होती है प्रीति एवं तीसरी होती है जिज्ञासा। ये तीनों चीजें जिसमें रहती हैं उसे बोलते हैं जीव। यदि जीव को अच्छा संग मिल जाये, अच्छी दिशा मिल जाये, नियम और व्रत मिल जायें तो धीरे-धीरे असंभव में से वासना मिटती जायेगी। रोग मिटता जाता है तो स्वास्थ्य अपने आप आता है, अँधेरा मिटता है तो प्रकाश अपने आप आता है। नासमझी मिटती है तो समझ अपने आप आ जाती है। ज्यों-ज्यों जप करेगा त्यों-त्यों मन पवित्र और सात्त्विक होगा, प्राणायाम करेगा तो बुद्धि शुद्ध होगी एवं शरीर स्वस्थ रहेगा और सत्संग सुनेगा तो

दिव्य ज्ञान प्राप्त होगा। इस प्रकार जप, प्राणायाम, सत्संग, साधन-भजन आदि करते रहने से धीरे-धीरे वासना क्षीण होने लगेगी एवं वह जीव सुखी होता जायेगा। जितनी वासना तेज उतना तेज वह दुःखी, जितनी वासना कम उतना कम दुःखी और वासना अगर बाधित हो गयी तो वह निर्दुःख नारायण का स्वरूप हो जायेगा।

नियम-व्रत के पालन से, धर्मानुकूल चेष्टा करने से वासना नियंत्रित होती है। धारणा-ध्यान से वासना शुद्ध होती है, समाधि से वासना शांत होती है और परमात्मज्ञान से वासना बाधित हो जाती है।

ज्यों-ज्यों वासना कम होती जायेगी और भगवद्प्रीति बढ़ती जायेगी त्यों-त्यों जिज्ञासा उभरती जायेगी। जानने की इच्छा जागृत होगी कि 'वह कौन है जो सुख को भी देखता है और दुःख को भी देखता है ? वह कौन है जिसको मौत नहीं मार सकती ? वह कौन है कि सृष्टि के प्रलय के बाद भी जिसका बाल तक बाँका नहीं होता ? आत्मा क्या है ? परमात्मा क्या है ? जगत की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय का हेतु क्या है ? बन्धनों से मुक्ति कैसे हो ? जीव क्या है ? ब्रह्म को कैसे जानें ? जिससे जीव और ईश्वर की सत्ता है उस ब्रह्म को कैसे जानें ?' इस प्रकार के विचार उत्पन्न होने लगेंगे। इसीको 'जिज्ञासा' बोलते हैं।

'जहाँ चाह वहाँ राह।' मनुष्य का जिस प्रकार का विचार और निर्णय होता है वह उसी प्रकार का कार्य करता है। अतः वासनापूर्ति के लिए जीवन को खपाना उचित नहीं, वासना को निवृत्त करें।

एक बार श्रीरामकृष्ण परमहंस को बोस्की का कुर्ता एवं हीरे की अँगूठी पहनने की इच्छा हुई, साथ ही हुक्का पीने की भी। उन्होंने अपने एक शिष्य से ये तीनों चीजें मँगवायीं। चीजें आ गयीं तब गंगा किनारे एक झाड़ी की आड़ में उन्होंने कुर्ता पहना, अँगूठी पहनी एवं हुक्के की कुछ फूँकें लीं और जोर से खिलखिलाकर हँस पड़े कि : 'ले, क्या मिला ? अँगूठी पहनने से कितना सुख मिला ? हुक्का पीने से क्या मिला ? भोग भोगने से पहले जो स्थिति होती है, भोग भोगने के बाद वैसी ही या उससे भी बदतर हो जाती है...'

इस प्रकार उन्होंने अपने मन को समझाया। वासना से मन उपराम हुआ। रामकृष्ण परमहंस प्रसन्न हुए। अँगूठी गंगा में फेंक दी, हुक्का लुढ़का दिया और कुर्ता फाड़कर फेंक दिया।

शिष्य छुपकर यह सब देख रहा था। बोला : ''गुरुजी ! यह क्या ?''

रामकृष्ण : ''रात्रि को स्वप्न आया था कि मैंने ऐसा-ऐसा पहना है। अवचेतन मन में छुपी हुई वासना थी। वह वासना कहीं दूसरे जन्म में न ले जाये इसलिए वासना से निवृत्त होने के लिए सावधानी से मैंने यह उपक्रम कर लिया।''

वासना से बचते हैं तो प्रीति उत्पन्न होती है और प्रीति से हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जायेंगे, त्यों-त्यों भगवत्स्वरूप तत्त्व की जिज्ञासा उभरती जायेगी। भगवान का सच्चा भक्त अज्ञानी कैसे रह सकता है ? भगवान में प्रीति होगी तो भगवद्-चिंतन, भगवद्ध्यान, भगवद्स्मरण होने लगेगा। भगवान ज्ञानस्वरूप हैं अतः अंतःकरण में ज्ञान की जिज्ञासा उत्पन्न होगी और उस जिज्ञासा की पूर्ति भी होगी।

इसीलिए गुरुपूनम आदि पर्व मनाये जाते हैं ताकि गुरुओं का सान्निध्य मिले, वासना से बचकर भगवत्प्रीति, भगवद्ज्ञान में आयें एवं भगवद्ज्ञान पाकर सदा के लिये सब दुःखों से छूट जायें।

वासना की चीजें अनेक हो सकती हैं लेकिन माँग सबकी एक ही होती है और वह माँग है सब दुःखों से सदा के लिए मुक्ति एवं परमानंद की प्राप्ति। कोई रुपये चाहता है तो कोई गहने-गाँठें... लेकिन सबका उद्देश्य यही होता है कि दुःख मिटे और सुख सदा टिका रहे। सुख के साधन अनेक हो सकते हैं लेकिन सुखी रहने का उद्देश्य सबका एक है। दुःख मिटाने के उपाय अनेक हो सकते हैं लेकिन दुःख मिटाने का उद्देश्य सबका एक है, चाहे चोर हो या साहूकार। साहूकार दान-पुण्य क्यों करता है कि यश मिले। यश से क्या होगा ? सुख मिलेगा। भक्त दान-पुण्य क्यों करता है कि भगवान रीझें। भगवान के रीझने से

क्या होगा ? आत्म-संतोष मिलेगा। व्यापारी दान-पुण्य क्यों करता है कि धन की शुद्धि होगी। धन की शुद्धि से मन शुद्ध होगा, सुखी होंगे। दान लेनेवाला दान क्यों लेता है कि दान से घर का गुजारा चलेगा, मेरा काम बनेगा अथवा इस दान को सेवाकार्य में लगायेंगे। इस प्रकार मनुष्य जो-जो चेष्टाएँ करता है वह सब दुःखों को मिटाने के लिए एवं सुख को टिकाने के लिए ही करता है।

वासनापूर्ति से सुख टिकता नहीं और दुःख मिटता नहीं। अतः वासना को विवेक से निवृत्त करो। जैसे, पहले के जमाने में लोग तीर्थों में जाते थे तो जिस वस्तु के लिए ज्यादा वासना होती थी वही छोड़कर आते थे। ब्राह्मण पूछते थे कि : 'तुम्हारा प्रिय पदार्थ क्या है ?' कोई कहता कि : 'सेव है।' ...तो ब्राह्मण कहता : ''सेव का तीर्थ में त्याग कर दो, भगवान के चरणों में अर्पण कर दो कि अब साल-दो साल तक सेव नहीं खाऊँगा।''

जो अधिक प्रिय होगा उसमें वासना प्रगाढ़ होगी और जीव दुःख के रास्ते जायेगा। अगर उस प्रिय वस्तु का त्याग कर दिया तो वासना कम होती जायेगी एवं भगवत्प्रीति बढ़ती जायेगी।

कोई कहे कि : 'महाराज ! हमको सत्संग में मजा आता है।' सत्संग में तो वासना निवृत्त होती है और प्रीति का सुख मिलता है। मजा अलग बात है और शांति, आनंद अलग बात है। 'सत्संग से मजा आता है' यह नासमझी है। सत्संग से तो शांति मिलती है, भगवत्प्रीति का सुख होता है। विषय-विकारों को भोगने से जो मजा आता है वैसा मजा सत्संग में नहीं आता। सत्संग का सुख तो दिव्य प्रीति का सुख होता है। इसीलिए कहा गया है :

तीरथ नहाये एक फल, संत मिले फल चार।
सद्गुरु मिले अनंत फल, कहत कबीर विचार॥

अनंत फल देनेवाली भगवत्प्रीति है। अतः जिज्ञासुओं को, साधकों को, भक्तों को वासनाओं से धीरे-धीरे अपना पिण्ड छुड़ाने का अभ्यास करना चाहिए।

✲

भगवान के अवतार भारत में ही क्यों ?

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

यह प्रकृति का विधान है कि जिसे जिस समय जिस वस्तु की अत्यंत आवश्यकता होती है उसे पूरी करनेवाला उसके पास पहुँच जाता है या तो मनुष्य स्वयं ही वहाँ पहुँच जाता है जहाँ उसकी आवश्यकता पूरी होनेवाली है।

मुझसे 'विश्व धर्म संसद' में पत्रकारों ने पूछा :

''भारत में ही भगवान के अवतार क्यों होते हैं ? हिन्दुस्तान में ही भगवान क्यों जन्म लेते हैं ? जब सारी सृष्टि भगवान की ही है तो आपके भगवान ने यूरोप या अमेरिका में अवतार क्यों नहीं लिया ? नानकजी या कबीरजी जैसे महापुरुष इन देशों में क्यों नहीं होते ?''

मैंने उनसे पूछा : ''जहाँ हरियाली होती है वहाँ बादल क्यों आते हैं और जहाँ बादल होते हैं वहाँ हरियाली क्यों होती है ?''

उन्होंने जवाब दिया : ''बापूजी ! यह तो प्राकृतिक विधान है।''

तब मैंने कहा : ''हमारे देश में अनादि काल से ही ब्रह्मविद्या और भक्ति का प्रचार हुआ है। इससे वहाँ भक्त पैदा होते रहे। जहाँ भक्त हुए वहाँ भगवान की माँग हुई तो भगवान आये और जहाँ भगवान आये वहाँ भक्तों की भक्ति और भी पुष्ट हुई। अतः जैसे जहाँ हरियाली वहाँ बादल और जहाँ बादल वहाँ हरियाली होती है वैसे ही हमारे देश में भक्तिरूपी हरियाली है इसलिए भगवान भी बरसने के लिए बार-बार आते हैं।''

मैं दुनियाँ के बहुत-से देशों में घूमा, कई जगह प्रवचन भी किये परन्तु भारत जितनी तादाद में तथा शांति से किसी दूसरे देश के लोग सत्संग सुन पाये हों ऐसा आज तक मैंने किसी भी देश में नहीं देखा। फिर चाहे 'विश्व धर्म संसद' ही क्यों न हो। जिसमें विश्वभर के वक्ता आयें वहाँ बोलनेवाले ६०० और सुननेवाले १५०० ! भारत में तो हररोज सत्संग के महाकुंभ लगते रहते हैं। भारत में आज भी लाखों की संख्या में हरिकथा के रसिक हैं। घरों में 'गीता' एवं 'रामायण' का पाठ होता है। भगवत्प्रेमी संतों के सत्संग में जाकर, उनसे ज्ञान-ध्यान प्राप्त कर श्रद्धालु अपना जीवन धन्य कर लेते हैं। अतः जहाँ-जहाँ भक्त और भगवत्कथा-प्रेमी होते हैं वहाँ-वहाँ भगवान और संतों का प्रागट्य भी होता ही रहता है।

चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं...

❋ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❋

[ध्यानयोग शिविर में निःसृत पूज्यश्री की आत्मस्पर्शी अमृतवाणी]

श्री भोले बाबा ने कहा है :

पृथ्वी नहीं जल भी नहीं,
नहीं अग्नि तू नहीं है पवन।
आकाश भी तू है नहीं,
तू नित्य है चैतन्यघन ॥
इन पाँचों का साक्षी सदा,
निर्लेप है तू सर्व पर।
निज रूप को पहिचानकर,
हो जा अजर हो जा अमर ॥
आत्मा अमल साक्षी अचल,
विभु पूर्ण शाश्वत मुक्त है।
चेतन असंगी निःस्पृही,
शुचि शांत अच्युत तृप्त है ॥
निज रूप के अज्ञान से,
जन्मा करे फिर जाय मर।
भोला ! स्वयं को जानकर,
हो जा अजर हो जा अमर ॥

श्रीमद् आद्य शंकराचार्यजी ने इसी बात को अपनी भाषा में कहा है :

मनो बुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायुः
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥
अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो
विभुर्व्याप्य सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्।
सदा मे समत्वं न मुक्तिर्नबन्धः
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥

'चिद्' अर्थात् चैतन्य। 'शिवोऽहम्' अर्थात् कल्याणकारी आत्मस्वरूप मैं हूँ। दृढ़ भावना करो कि 'मैं आत्मा हूँ... चैतन्यस्वरूप हूँ... आनंदस्वरूप हूँ...' जिन क्षणों में हम जाने-अनजाने देहाध्यास भूल जाते हैं, उन्हीं क्षणों में हम ईश्वर के साथ एक हो जाते हैं। जाने-अनजाने जब हम देहाभिमान से ऊपर उठे हुए होते हैं, उस वक्त हमारा मन दैवी साम्राज्य में विहार करता है। जिस क्षण अनजाने में भी हम काम करते-करते 'मैं-मेरापना' भूल जाते हैं उसी समय अलौकिक आनंदस्वरूप आत्मा के राज्य में हम अठखेलियाँ करने लगते हैं और जब हम नामरूप के जगत को सत्य समझकर देखने, सुनने एवं विचारने लगते हैं, उसी क्षण अद्भुत आत्मराज्य से नीचे आ जाते हैं।

दिन में न जाने कितनी बार ऐसी सुन्दर घड़ियाँ आती हैं, जब हम अनजाने में ही आत्मराज्य में होते हैं, आत्म-साक्षात्कार की अवस्था में होते हैं लेकिन 'यह वही अवस्था है...' इसका हमें पता नहीं चलता। इसीलिए हम बार-बार मनोराज्य में, मानसिक कल्पनाओं में बह जाते हैं। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो परमात्मा का दर्शन न करता हो, साक्षात्कार न करता हो लेकिन पता नहीं होता कि 'यही वह अवस्था है...' इसलिए प्रपंचों में उलझ जाता है।

दूसरी बात यह है कि इन्द्रियाँ भी उसे बाहर खींच ले जाती हैं, बहिर्मुख कर देती हैं। स्वरूप का ज्ञान अगर एक बार भी ठीक से हो जाये तो, इन्द्रियों के बाहर जाने पर भी वह अपने वास्तविक होश (भान) में बना रहता है।

कई लोग सोचते हैं कि : 'मैं ब्रह्म तो हूँ लेकिन यह भाव दृढ़ हो जाये... सोऽहम् अर्थात् वह मैं हूँ लेकिन यह भाव दृढ़ करूँ...' तो यह दृढ़ करने का

जो भाव आ रहा है वह इसीलिये कि अभी ब्रह्मतत्त्व को ठीक से नहीं समझ पाये हैं। यदि ठीक से समझ लें तो इसमें आवृत्ति की जरूरत नहीं और पा लेने के बाद खोने का भय नहीं।

उस परमात्मा को भावना करके नहीं पाया जाता क्योंकि भावनाएँ सदा बदलती रहती हैं जबकि परमात्मज्ञान सदा एकरस रहता है। जैसे भावना करो कि 'मेरे हाथ में चाँदी का सिक्का है।' आप भावना तो करेंगे लेकिन संदेह बना रहेगा कि 'सच में है कि नहीं... या कुछ और है ?' ...लेकिन आपने यदि एक बार भी देख लिया कि 'यह चाँदी का सिक्का है...' तो इसका ज्ञान आपको हो गया। फिर यह ज्ञान मैं आपसे छीन नहीं सकता।

आपको इसका विस्मरण हो सकता है, अदर्शन हो सकता है लेकिन अज्ञान नहीं होगा। ऐसे ही भगवान की भावना करते हो तो भावना बदल सकती है लेकिन एक बार भी भगवान के स्वरूप का ज्ञान हो जाये, भगवान के स्वरूप का साक्षात्कार हो जाये तो फिर चलते-फिरते, लेते-देते, जीते-मरते, इस लोक-परलोक में सर्वत्र, सर्व काल में ईश्वर का अनुभव होने लगता है। आवृत्ति करके पक्का नहीं किया जाता कि 'मैं आत्मा हूँ... मैं आत्मा हूँ...' क्योंकि परमात्मा तो आपका वास्तविक स्वरूप है, उसे रटना क्या ? जैसे आपका नाम मोहन है तो क्या आप दिन-रात 'मैं मोहन हूँ... मोहन हूँ...' रटते हो ? नहीं, मोहन तो आप हो ही। ऐसे ही ब्रह्म तो आप हो ही। अतः यह रटना नहीं है कि 'मैं ब्रह्म हूँ...' वरन् इसका अनुभव करना है। परमात्मा के खोने का कभी भय नहीं रहता। रूपये-पैसे खो सकते हैं, पढ़ाई-लिखाई के शब्द आप खो सकते हो, भूल सकते हो लेकिन उस परमात्मा को भूलना चाहो तो भी नहीं भूल सकते। जो सदा है, सर्वत्र है, आपका अपना-आपा बना बैठा है, उसे कैसे भूल सकते हो ? उसको समझने के लिये केवल तत्परता चाहिए।

उच्च कोटि के एक महात्मा थे। किसी शिष्य ने उनसे कहा : ''गुरुजी ! मुझे भगवान का दर्शन कराइये।''

महात्मा ने उठाया डण्डा और कहा : ''इतने रूपों में प्रभु दिख रहा है, उसका तूने क्या सदुपयोग किया ? फिर से प्रभु का कोई नया रूप तेरे आगे प्रगट कराऊँ ? कितने रूपों में वह गा रहा है ! कितने रूपों में वह गुनगुना रहा है ! उसका तूने क्या फायदा उठाया, जो फिर एक नया रूप देखना चाहता है ?''

तुलसीदासजी कहते हैं :

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।

जड़ और चेतन सब परमात्ममय ही तो हैं ! जहाँ घन अवस्था है उसको जड़ बोलते हैं और जहाँ जाग्रत अवस्था है उसे चेतन कहते हैं। जैसे, एक ही पानी बर्फ भी बन जाता है और वाष्प भी। वाष्प एक सूक्ष्म और चेतन अवस्था है जबकि बर्फ घनीभूत और जड़ अवस्था है लेकिन हैं तो दोनों पानी ही। ऐसे ही चित्त की वृत्ति जब सूक्ष्म, अति सूक्ष्म होती है तब परब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है और स्थूल इन्द्रियों के द्वारा जो व्यवहार हो रहा है वह परब्रह्म परमात्मा का स्थूल रूप से साक्षात्कार ही है।

अज्ञानी लोग देह को ही 'मैं' मानते हैं लेकिन देह के भीतर जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म चेतना कार्य करती है वह आनंदस्वरूप आत्मा है, सुखस्वरूप आत्मा है। परम पुरुषार्थ यही है कि उसे जान लें।

उसे जानने की सबसे सरल युक्ति तो यही है कि ऐसी भावना करें : 'जो कुछ दिख रहा है उसमें मेरा ही स्वरूप है।' जैसे केश, नख, त्वचा, रोमकूप आदि सब भिन्न-भिन्न होते हुए भी शरीर की एकता का अनुभव होता है, ऐसे ही स्थूल जगत में सब भिन्न-भिन्न दिखते हुए भी ज्ञानवान् को सर्वत्र अपने अद्वैत स्वरूप का अनुभव होता है।

'जन्म और मृत्यु शरीर के होते हैं, जाति स्थूल शरीर की होती है, बन्धु और मित्र सब स्थूल शरीर के संबंध हैं।

न मे मृत्युशंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्मः ।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यः
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥

'मैं तो चिदानंदस्वरूप हूँ... ॐ...ॐ...ॐ...'

बाह्य सुख-सुविधाओं के न होते हुए भी जितना सुख यहाँ ध्यानयोग शिविर में मिल रहा है, उतना सुख बड़ी-बड़ी होटलों में रहने पर भी नहीं मिला होगा क्योंकि वह सुख सदोष सुख था, विकारी सुख था । भगवान के रास्ते का, ईश्वरीय मार्ग का निर्दोष-निर्विकारी सुख वह नहीं था लेकिन यहाँ जो सुख मिल रहा है वह किसी विषय-भोग का नहीं, वरन् निर्विषय नारायण का सुख मिल रहा है । गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'श्रीरामचरितमानस' में कहा है :

सकल पदारथ इह जग मांही ।
कर्म हीन नर पावत नाहीं ॥

इस संसार में सब प्रकार के पदार्थ हैं फिर यत्न करके चाहे नर्क का सामान इकट्ठा करो चाहे स्वर्ग का, चाहे वैकुंठ का करो चाहे एकदम निर्दोष, शुद्ध-बुद्ध आत्मा का ज्ञान पाकर मुक्त हो जाओ... यह आपके हाथ की बात है ।

ध्यान में बैठने से पहले अपना समग्र मानसिक चिन्तन तथा बाहर की तमाम संपत्ति ईश्वर के या सद्गुरु के चरणों में अर्पण करके शांत हो जाओ । इससे आपको कोई हानि न होगी । ईश्वर आपकी सम्पत्ति, देह, प्राण और मन की रक्षा करेंगे । ईश्वरार्पणबुद्धि से कभी हानि नहीं होती । इतना ही नहीं, देह, प्राण में नवजीवन का सिंचन होता है । इससे आप शांति व आनंद का स्रोत बनकर जीवन को सार्थक कर सकेंगे । आपकी और पूरे विश्व की वास्तविक उन्नति होगी । ('जीवन रसायन' से)

सद्गुरु की करुणा

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

ब्रह्माजी के मानस पुत्र ऋभु मुनि जन्मजात ज्ञातज्ञेय थे, फिर भी वैदिक मर्यादा का पालन करने के लिये अपने बड़े भाई सनत्सुजात से दीक्षित हो गये एवं अपने आत्मानंद में परितृप्त रहने लगे । ऋभु मुनि ऐसे विलक्षण परमहंस कोटि के साधु हुए कि उनके शरीर पर कौपीन मात्र था । उनकी देह ही उनका आश्रम था, अन्य कोई आश्रम उन्होंने नहीं बनाया, इतने विरक्त महात्मा थे । पूरा विश्व अपनी आत्मा का ही विलास है, ऐसा समझकर वे सर्वत्र विचरते रहते थे ।

एक बार विचरण करते-करते वे पुलस्त्य ऋषि के आश्रम में पहुँचे । पुलस्त्य का पुत्र निदाघ वेदाध्ययन कर रहा था । उसकी बुद्धि कुछ गुणग्राही थी । उसने देखा कि अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित कोई आत्मारामी संत पधारे हैं । उठकर उसने ऋभु मुनि का अभिवादन किया । पिता-पुत्र दोनों ने उन्हें प्रणाम किये । ऋभु मुनि ने उनका आतिथ्य स्वीकार किया ।

जैसे रहूगण राजा पहचान गये थे कि जड़भरत आत्मारामी संत हैं, परीक्षित और अन्य ऋषि पहचान गये थे कि शुकदेवजी आत्मवेत्ता महापुरुष हैं, ऐसे ही आश्रम में रहते-रहते निदाघ इतना पवित्र हो गया था कि उसने भी पहचान लिया कि

ऋभु मुनि आत्मज्ञानी महापुरुष हैं। आत्मवेत्ता ऋभु मुनि को पहचानते ही उसका हृदय भावविभोर हो उठा। उसे हुआ कि : 'मैं अपने पिता के आश्रम में रहता हूँ इसलिए पिता-पुत्र का संबंध होने के कारण कहीं मेरी यात्रा अधूरी न रह जाये !'

अतः भावविभोर होकर उसने ऋभु मुनि के श्रीचरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। ऋभु मुनि को भी पता चल गया कि अधिकारी व्यक्ति है।

एकाध दिन पुलस्त्य ऋषि के आश्रम में रहकर जब ऋभु मुनि चलने को उद्यत हुए तो निदाघ ने कहा : ''भगवन् ! मुझे भी अपने साथ ले चलें।''

ऋभु मुनि : ''किसका साथ कहाँ तक ? शरीर का साथ करना है कि मैं जहाँ पहुँचा हूँ वहाँ पहुँचना है ?''

निदाघ : ''आप जहाँ पहुँचायें।''

तब पुलस्त्य ऋषि ने कहा : ''मुनिवर ! आप इस बालक का हाथ पकड़िये। इसे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कीजिए।''

ऋभु मुनि ने बात स्वीकार कर ली। पिता की अनुमति प्राप्त कर निदाघ ऋभु मुनि के साथ चल पड़ा। एकांत अरण्य में से गुजरते-गुजरते दोनों किसी सरिता के किनारे कुछ दिन रहे। गुरु-शिष्य कंदमूल-फल का भोजन करते, आत्मा-परमात्मा की चर्चा करते। सेवा में निदाघ की तत्परता एवं त्याग देखकर ऋभु मुनि ने उसे तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया।

कुछ समय के पश्चात् ऋभु मुनि को पता चला होगा कि निदाघ ब्रह्मज्ञान का श्रवण एवं साधना तो करता है किन्तु इसकी वासना अभी पूर्ण रूप से मिटी नहीं है। अतः उन्होंने निदाघ को आज्ञा दी :

''बेटा ! अब गृहस्थ धर्म का पालन करो और गृहस्थी में रहते हुए मेरे दिये हुए ज्ञान का खूब मनन-निदिध्यासन करके अपने मूल स्वभाव में जाग जाओ।''

गुरुआज्ञा शिरोधार्य कर निदाघ अपने पिता के पास आया। पिता ने उसका विवाह कर दिया। इसके पश्चात् निदाघ देविका नदी के तट पर वीरनगर के पास अपना आश्रम बनाकर निवास करने लगा। वर्ष पर वर्ष बीतने लगे।

ब्रह्मवेत्ता महापुरुष जिसका हाथ पकड़ते हैं वह अगर उनमें श्रद्धा रखता है तो वे कृपालु महापुरुष उस पर निगरानी रखते हैं कि साधक कहीं भटक न जाये... कैसे भी करके संसार से पार हो जाये।

एक दिन ऋभु मुनि के मन में हुआ : 'मेरे शिष्य निदाघ की क्या स्थिति हुई होगी ? चलो, देख आयें।' परमहंस के वेश में वे निदाघ की कुटिया पर पहुँच गये। निदाघ उन्हें पहचान न पाया लेकिन उनको साधु-संत मानकर उनका सत्कार किया, उन्हें भोजन कराया। फिर विश्राम के लिए ऋभु मुनि लेटे और निदाघ पास में बैठकर पंखा झलने लगा। निदाघ ने पूछा :

''महात्माजी ! भोजन तो ठीक था न ? आप तृप्त तो हुए न ? अब आपकी थकान मिट रही है न ?''

ऋभु मुनि समझ गये कि शिष्य ने मुझे पहचाना नहीं है। जो अपने-आपको भी नहीं पहचानता, वह गुरु को कैसे पहचानेगा ? गुरु को पहचानेगा भी तो उनके बाहर के रूप-आकार को। बाहर के रंग, रूप, वेश बदल गये तो पहचान भी बदल जायेगी। जितने अंश में आदमी अपनेको जानता है, उतने ही अंश में वह ब्रह्मवेत्ता गुरुओं की महानता का एहसास करता है। सद्गुरु को जान ले, अपनेको पहचान ले। अपनेको पहचान ले, तो सद्गुरु को जान ले।

जिनकी बुद्धि सदा ब्रह्म में रमण करती थी, ऐसे कृपालु भगवान ऋभु ने निदाघ का कल्याण करने के लिए कहा : ''भूख मिटी या नहीं मिटी, यह मुझसे क्यों पूछता है ? मैंने भोजन किया ही नहीं है। भूख मुझे कभी लगती ही नहीं है। भूख

और प्यास प्राणों को लगती है लेकिन अज्ञानी समझता है कि 'मुझे भूख-प्यास लगी...' मानों, दो-चार घंटों के लिये भूख-प्यास मिटेगी भी तो फिर लगेगी।

थकान भी शरीर को लगती है। बहुत-बहुत तो मन उससे तादात्म्य करेगा तो मन को लगेगी। मुझ चैतन्य को, असंग द्रष्टा को कभी भूख-प्यास, थकान नहीं लगती। तू प्राणों से ही पूछ कि भूख-प्यास मिटी कि नहीं। शरीर से ही पूछ कि थकान मिटी कि नहीं। जिसको कभी भूख-प्यास लगती नहीं, उसको तू पूछता है कि भूख-प्यास मिटी कि नहीं ? जिसको कभी थकान छू तक नहीं सकती, उसको तू पूछता है कि थकान मिटी कि नहीं ?''

थकान की नहीं पहुँच है मुझ तक...
भूख-प्यास तो है प्राणों का स्वभाव।
मैं हूँ असंग निर्लेपी निर्भाव ॥

निदाघ ने कहा : ''आप जैसा बोलते हैं, मेरे गुरुदेव भी ऐसा ही बोलते थे। आप जिस प्रकार का ज्ञान दे रहे हैं, ऐसा ही ज्ञान मेरे गुरुदेव देते थे... आप तो मेरे गुरुदेव लगते हैं !''

ऋभु मुनि : ''लगते क्या हैं ? हैं ही, नादान ! मैं ऋभु मुनि ही हूँ। तूने गृहस्थी के जटिल व्यवहार में आत्मविद्या को ही भुला दिया ?''

निदाघ ने पैर पकड़ते हुए कहा :

''गुरुदेव ! आप ?''

निदाघ ने गुरुदेव से क्षमायाचना की। ऋभु मुनि उसे आत्मज्ञान का थोड़ा-सा उपदेश देकर चल दिये। कुछ वर्ष और बीत गये। विचरण करते-करते ऋभु मुनि एक बार फिर वहीं पधारे, अपने शिष्य निदाघ की खबर लेने।

उस वक्त नगर में राजा की सवारी जा रही थी और निदाघ सवारी देखने के लिये खड़ा था। ऋभु मुनि उसके पास जाकर खड़े हो गये और उन्होंने सोचा : 'निदाघ तन्मय हो गया है सवारी देखने में। आँखों को ऐसा भोजन करा रहा है कि शायद उसके मन में आ जाय कि 'मैं राजा बन जाऊँ।' राजेश्वर से भोगेश्वर। पुण्यों के बल से राजा बन जायेगा तो फिर पुण्यनाश हो जायेगा और नर्क में जा गिरेगा। एक बार हाथ पकड़ा है तो उसको किनारे लगाना ही है।'

कैसा करुणाभरा हृदय होता है सद्गुरु का ! कहीं साधक फिसल न जाये, भटक न जाये...

ऋभु मुनि ने पूछा : ''यह सब क्या है ?''

निदाघ : ''यह राजा की शोभायात्रा है।''

''उसमें राजा कौन और प्रजा कौन ?''

''जो ऊपर बैठा है वह राजा है और जो पैदल चल रहे हैं वे प्रजा हैं।''

''राजा किसके ऊपर बैठा है ?''

''राजा हाथी पर बैठा है।''

''हाथी कौन है ?''

''राजा जिसके ऊपर बैठा है वह चार पैरवाला पर्वतकाय प्राणी हाथी है। महाराज ! इतना भी नहीं समझते ?''

निदाघ प्रश्न सुनकर चिढ़ने लगा था लेकिन ऋभु मुनि स्वस्थ चित्त से पूछे ही जा रहे थे :

''हाँ... राजा जिसके ऊपर बैठा है वह हाथी है और हाथी के ऊपर जो बैठा है वह राजा है। अच्छा... तो राजा और हाथी में क्या फर्क है ?''

अब निदाघ को गुस्सा आ गया। छलाँग मारकर वह ऋभु मुनि के कंधों पर चढ़ गया और बोला :

''देखो, मैं तुम पर चढ़ गया हूँ तो मैं राजा हूँ और तुम हाथी हो। यह हाथी और राजा में फर्क है।''

फिर भी शांतात्मा, क्षमा की मूर्ति ब्रह्मवेत्ता ऋभु मुनि निदाघ से कहने लगे :

''इसमें 'मैं' और 'तुम' किसको बोलते हैं ?''

निदाघ सोच में पड़ गया। प्रश्न अटपटा था। फिर भी बोला :

''जो ऊपर है वह 'मैं' है और जो नीचे है वह 'तुम' है।''

''किन्तु 'मैं' और 'तुम' में क्या फर्क है ? हाथी भी पाँच भूतों का है और राजा भी पाँच भूतों का है। मेरा शरीर भी पाँच भूतों का है और तुम्हारा शरीर भी पाँच भूतों का है। एक ही वृक्ष की दो डालियाँ आपस में टकराती हैं अथवा विपरीत दिशा में जाती हैं, पर दोनों में रस एक ही मूल से आता है। इसी प्रकार 'मैं' और 'तुम' एक ही सत्ता से स्फुरित होते हैं, तो दोनों में फर्क क्या रहा ?''

निदाघ चौंका : 'अरे ! बात-बात में आत्मज्ञान का ऐसा अमृत परोसनेवाले मेरे गुरुदेव ही हो सकते हैं, दूसरे का यह काम नहीं। ऐसी बातें तो मेरे गुरुदेव ही कहा करते थे !'

वह झट से नीचे उतरा और गौर से निहारा तो वे ही गुरुदेव ! निदाघ उनके चरणों में लिपट गया :

''गुरुदेव...! गुरुदेव...! क्षमा करो। घोर अपराध हो गया। कैसा भी हूँ... आपका बालक हूँ। क्षमा करो, प्रभु !''

ऋभु मुनि वही तत्त्वचर्चा आगे बढ़ाते हुए बोले : ''क्षमा माँगनेवाले में और क्षमा देनेवाले में मूल धातु कौन-सी है ?''

निदाघ ने कहा : ''हे भगवन् ! क्षमा माँगनेवाले में और क्षमा देनेवाले में वही मूल धातु है, वही आत्मदेव है, जिसमें मुझे जगाने के लिये आप करुणावान् तत्पर हुए हैं।

हे गुरुदेव ! मैं संसार की मायाजाल में कहीं उलझ न जाऊँ, इसलिये आप मुझे जगाने के लिये कैसे-कैसे रूप धारण करके आते हैं ! हे प्रभु ! आपकी बड़ी कृपा है !''

ऋभु मुनि : ''बेटा ! तुझे जो ज्ञान मिला था उसमें तेरी तत्परता न होने के कारण इतने वर्ष व्यर्थ बीत गये, उसे तू भूल गया। संसार की मोहनिशा में सोता रह गया। संसार के इस मिथ्या दृश्य को सत्य मानता रह गया। जब जिसकी जैसी-जैसी दृष्टि होती है, उसे तब संसार वैसा ही भासता है। इस संसार का आधार जो परमात्मा है, उसको जब तक नहीं जाना तब तक ऐसी गलतियाँ होती ही रहेंगी। अतः हे निदाघ ! अब तू जाग। परमात्मतत्त्व का विचार कर अपने निज आत्मदेव को जान ले। फिर संसार में रहकर भी तू उससे अलिप्त रह सकेगा।''

निदाघ ने उनकी बड़ी स्तुति की। ऋभु मुनि की कृपा से निदाघ आत्मनिष्ठ हो गया।

ऋभु मुनि की इस क्षमाशीलता को सुनकर सनकादि गुरुओं को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने ब्रह्माजी के सामने उनकी महिमा गायी और 'क्षमा' का एक अक्षर 'क्ष' लेकर इनका नाम 'ऋभुक्ष' रख दिया। तबसे सांप्रदायिक लोग उन्हें 'ऋभुक्षानंद' के नाम से स्मरण करते हैं।

कैसा करुणावान् हृदय होता है सद्गुरु का ! शिष्य संसार की मायाजाल में उलझकर उनके दिये हुए ज्ञान को भूल जाता है तो वे कैसे-कैसे रूप लेकर उसे स्मरण करवाते हैं ! अज्ञानवश निदाघ गुरुदेव के कंधे पर भी चढ़ गया फिर भी क्षमावान् ऋभु मुनि नाराज न हुए वरन् आत्मज्ञान के अधिकारी निदाघ को पुनः आत्मज्ञान का उपदेश देकर उस आत्मपद पर आरूढ़ कर दिया जहाँ से संसार में पुनः आवागमन नहीं होता।

हे सद्गुरुदेव ! तुम्हारी
महिमा है बड़ी निराली।
किन-किन युक्तियों से करते
शिष्यों की तुम रखवाली॥

❊

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीआर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जाएगी।

लक्ष्य सबका एक है...

❋ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❋

जन्म का कारण है अज्ञान, वासना। संसार में सुख तो मिलता है क्षण भर का, लेकिन भविष्य अंधकारमय हो जाता है। जबकि भगवान के रास्ते चलने में शुरूआत में कष्ट तो होता है, संयम रखना पड़ता है, सादगी से रहना पड़ता है, ध्यान-भजन में चित्त लगाना पड़ता है, लेकिन बाद में अनंत ब्रह्माण्डनायक, परब्रह्म परमात्मा के साथ अपनी जो सदा एकता थी, उसका अनुभव हो जाता है।

संसार का सुख भोगने के लिए पहले तो परिश्रम करो, बाद में स्वास्थ्य अनुकूल हो और वस्तु अनुकूल हो तो सुख होगा लेकिन क्रियाजन्य सुख में पराधीनता, शक्तिहीनता और जड़ता है। इससे बढ़िया सुख है धर्मजन्य सुख। धर्म करने में तो कष्ट सहना पड़ता है लेकिन उसका सुख परलोक तक मदद करता है। अतल, वितल, तलातल, रसातल, पाताल, भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, तपलोक आदि के सुख प्राप्त होते हैं।

योग में भी यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि... इस प्रकार परिश्रम करना पड़ता है जिससे चित्त की शांतिरूपी फल यहीं मिलता है और परलोक में भी सद्गति होती है लेकिन परिश्रम तो करना ही पड़ता है।

ज्ञानमार्ग में भी श्रवण-मनन-निदिध्यासन का सुखद परिश्रम तो करना ही पड़ता है। एक भगवद्भक्ति ही है कि जिसमें परिश्रम की जगह पर भगवान से प्रेम है और भगवान से प्रेम होता है भगवान को अपना मानने से। भगवान में प्रीति होने से भक्तिरस शुरू होता है। भक्ति करने में भी रस और भोगने में भी रस। इसमें कभी कमी नहीं होती वरन् यह नित्य नवीन एवं बढ़ता रहता है।

भजनस्य किं लक्षणम् ? भजनस्य लक्षणं रसनम्। जिससे अंतरात्मा का रस उत्पन्न हो, उसका नाम है भजन। **भक्त्याः किं लक्षणम् ? भागो ही भक्तिः।** उपनिषदों में यह विचार आया है। भक्ति का लक्षण क्या है ? जो भाग कर दे, विभाग कर दे कि यह नित्य है, यह अनित्य है... यह अंतरंग है, यह बहिरंग है... यह (शरीर) छूटनेवाला है, यह (आत्मा) सदा रहनेवाला है... वह भक्ति है। शरीर व संसार नश्वर है, जीवात्मा-परमात्मा शाश्वत् है।

जो सदा रहता है, उससे प्रीति कर लें, बस। ऐसा न सोचें कि दुनिया कब हुई ? कैसे हुई ? वरन् दुनिया के सार में मन लगायें। दुनिया का सार है परमात्मा। उसी परमात्मा के विषय में सोचें, उसीके विषय में सुनें तो भगवत्प्रीति बढ़ने लगेगी। भगवत्संबंधी बातें सुनें, बार-बार उन्हीं का मनन करें।

'मुझमें काम है... मुझमें क्रोध है...' इन विघ्नों से, दुर्गुणों से लड़ो मत और न ही अपने सद्गुणों का चिंतन करके अहंकार करो, वरन् मन को भगवान में लगाओ तो दुर्गुण की वासना और सद्गुण का अहंकार दोनों ढीले हो जायेंगे और अपना मन अपने परमेश्वर में लग जायेगा। यही तो जीवन की कमाई है !

संसारतापतप्तानां योगो परम औषधः।

संसार के ताप में तपे हुए जीवों के लिये योग परम औषध है। योग तीन प्रकार का होता है : पहला है ज्ञानयोग। तीव्र विवेक हो, वैराग्य हो। 'मैं देह नहीं... मन नहीं... इन्द्रियाँ नहीं... बुद्धि नहीं...' ऐसा विचार करते-करते सबसे अलग निर्विचार अपने नारायणस्वरूप में टिक जायें। भले, पहले दस सेकण्ड तक ही टिकें, फिर बीस, पच्चीस, तीस सेकण्ड... ऐसा करते-करते तीन मिनट तक निर्विचार अपने नारायणस्वरूप में टिक जायें तो हो जायेगा कल्याण। यह एक दिन... दो दिन... एक महीने... दो महीने का काम नहीं है। इसके लिए तो दीर्घकाल तक दृढ़ अभ्यास चाहिए। चिरकाल की वासनाएँ एवं चिरकाल

की चंचलता चिरकाल के अभ्यास से ही मिटेंगी।

दूसरा है ध्यानयोग। **देशबंधस्य चित्तस्य धारणा।** एक देश में अपनी वृत्ति को बाँधना, एकाग्र करना... इसका नाम है धारणा। भगवान, स्वस्तिक, दीपक की लौ अथवा गुरु-गोविंद को देखते-देखते एकाग्र होते जायें। मन इधर-उधर जाये तो उसे पुनः एकाग्र करें। इसको 'धारणा' बोलते हैं। १२ निमेष तक मन एक जगह पर रहे तो धारणा बनने लगती है।

आँख की पलकें एक निमेष में गिरती हैं।

१२ निमेष = १ धारणा। ऐसी १२ धारणाएँ हो जायें तो ध्यान लगता है। ध्यानयोगी अपने आपका मार्गदर्शक बन जाता है। १२ ध्यान = १ सविकल्प समाधि और १२ सविकल्प समाधि = निर्विकल्प नारायण में स्थिति।

तीसरा है भक्तियोग। भगवान को अपना मानना एवं अपनेको भगवान का मानना। **जो तिद्भावे सो भलिकार...** परमात्मा की इच्छा में अपनी इच्छा मिला देना, पूर्ण रूप से उसीकी शरण ग्रहण करना... यही भक्तियोग है।

जैसे बिल्ली अपने मुँह से चूहे को पकड़ती है, उसी मुँह से अपने बच्चों को पकड़कर ले जाती है। उसके मुँह में आकर उसका बच्चा तो सुरक्षित हो जाता है लेकिन चूहे की क्या दशा होती है ? ऐसे ही जो भगवान का हो जाता है, वह संसारमाया से पूर्णतया सुरक्षित हो जाता है। उसकी पूरी सँभाल भगवान स्वयं करते हैं। फिर उसके पास अपना कहने को कुछ नहीं बचता तो उसमें वासना टिक कैसे सकती है ?

अतः किसी भी योग का आश्रय लो... ज्ञानयोग, ध्यानयोग या भक्तियोग का, सबका उद्देश्य तो एक ही है : सब दुःखों से सदा के लिए निवृत्ति और परमानंद की प्राप्ति। ईश्वरप्रीत्यर्थ निष्काम भाव से किये गये कर्म कर्मयोग है। दुर्वासना ही जीव को चौरासी के चक्कर में भटकाती है एवं वासनानिवृत्ति से ही जीव चौरासी के चक्कर से छूटकर नित्य शुद्ध-बुद्ध चैतन्यस्वरूप, आनंदस्वरूप, सत्यस्वरूप परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जाता है।

❊

भक्त ध्रुव की दृढ़ता

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

[गतांक का शेष]

अंत में भगवान नारायण ने ध्रुव की तपस्या से प्रसन्न होकर दर्शन दिये। ध्रुव प्रभु के सामने हाथ जोड़े खड़े थे। वे प्रभु की स्तुति करना चाहते थे, पर कैसे करें, यह नहीं जानते थे। तब सर्वान्तर्यामी श्रीहरि उनके मन की बात जान गये और उन्होंने ध्रुव के गाल से अपना शंख छुआ दिया। शंख का स्पर्श होते ही ध्रुव को दिव्य वाणी प्राप्त हो गयी और अब वे प्रभु की स्तुति करने लगे : ''प्रभो ! आप सर्वशक्तिमान् हैं। आप ही मेरे अन्तःकरण में प्रवेश कर अपने तेज से मेरी इस सोयी हुई वाणी को सजीव करते हैं तथा हाथ, पैर, कान और त्वचा आदि अन्यान्य इन्द्रियों एवं प्राणों को भी चेतना देते हैं। मैं आप अन्तर्यामी भगवान को प्रणाम करता हूँ।

भगवन् ! आप एक ही हैं, परंतु अपनी अनन्त गुणमयी मायाशक्ति से इस महदादि सम्पूर्ण प्रपंच को रचकर अन्तर्यामीरूप से उसमें प्रवेश कर जाते हैं और फिर इसके इन्द्रियादि असत् गुणों में उनके अधिष्ठातृ देवताओं के रूप में स्थित होकर अनेक रूप भासते हैं, ठीक वैसे ही जैसे तरह-तरह की लकड़ियों में प्रकट हुई आग अपनी उपाधियों के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में भासती है।

नाथ ! सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी ने भी आपकी शरण लेकर आपके दिये हुए ज्ञान के प्रभाव से ही इस जगत को सोकर उठे हुए पुरुष के समान

देखा था। दीनबन्धो ! आपके उन्हीं चरणतल का आश्रय मुक्त पुरुष भी लेते हैं, कोई भी कृतज्ञ पुरुष उन्हें कैसे भूल सकता है ?

प्रभो ! इन शवतुल्य शरीरों के द्वारा भोगा जानेवाला, इन्द्रिय और विषयों के संसर्ग से उत्पन्न सुख तो मनुष्यों को नरक में भी मिल सकता है। जो लोग इस विषयसुख के लिए लालायित रहते हैं और जो जन्म-मरण के बन्धन से छुड़ा देनेवाले कल्पतरुस्वरूप आपकी उपासना भगवत्प्राप्ति के सिवा किसी अन्य उद्देश्य से करते हैं, उनकी बुद्धि अवश्य ही आपकी माया के द्वारा ठगी गयी है।

नाथ ! आपके चरणकमलों का ध्यान करने से और आपके भक्तों के पवित्र चरित्र सुनने से प्राणियों को जो आनन्द प्राप्त होता है, वह निजानन्दस्वरूप ब्रह्म में भी नहीं मिल सकता। फिर जिन्हें काल की तलवार काट डालती है, उन स्वर्गीय विमानों से गिरनेवाले पुरुषों को तो वह सुख मिल ही कैसे सकता है ?

अनन्त परमात्मन् ! मुझे तो आप उन विशुद्धहृदय महात्मा भक्तों का संग दीजिये, जिनका आपमें अविच्छिन्न भक्तिभाव है, उनके संग में मैं आपके गुणों और लीलाओं की कथा-सुधा को पी-पीकर उन्मत्त हो जाऊँगा और इस अनेक प्रकार के दुःखों से पूर्ण भयंकर संसारसागर के उस पार सहज ही पहुँच जाऊँगा।

कमलनाभ प्रभो ! जिनका चित्त आपके चरणकमल की सुगन्ध में लुभाया हुआ है, उन महानुभावों का संग जो लोग करते हैं वे अपने इस अत्यन्त प्रिय शरीर और इसके सम्बन्धी पुत्र, मित्र, गृह और स्त्री आदि की सुधि भी नहीं करते।

अजन्मा परमेश्वर ! मैं तो पशु, वृक्ष, पर्वत, पक्षी, सरीसृप (सर्पादि रेंगनेवाले जन्तु), देवता, दैत्य और मनुष्य आदि से परिपूर्ण तथा महदादि अनेकों कारणों से सम्पादित आपके इस सदसदात्मक स्थूल विश्वरूप को ही जानता हूँ, इससे परे तो आपका परम स्वरूप है, जिसमें वाणी की गति नहीं है, उसका मुझे पता नहीं है।

भगवन् ! कल्प का अन्त होने पर योगनिद्रा में स्थित जो परम पुरुष इस सम्पूर्ण विश्व को अपने उदर में लीन करके शेषजी के साथ उन्हींकी गोद में शयन करते हैं तथा जिनके नाभि-समुद्र से प्रकट हुए सर्वलोकमय सुवर्णवर्ण कमल से परम तेजोमय ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, वे भगवान आप ही हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ !

प्रभो ! आप अपनी अखण्ड चिन्मयी दृष्टि से बुद्धि की सभी अवस्थाओं के साक्षी हैं तथा नित्यमुक्त, शुद्ध सत्वमय, सर्वज्ञ, परमात्मस्वरूप, निर्विकार, आदिपुरुष, षडैश्वर्य-सम्पन्न एवं तीनों गुणों के अधीश्वर हैं। आप जीव से सर्वथा भिन्न हैं तथा संसार की स्थिति के लिए यज्ञाधिष्ठाता विष्णुरूप से विराजमान हैं।

आपसे ही विद्या, अविद्या आदि विरुद्ध गतियोंवाली अनेकों शक्तियाँ धारावाहिक रूप से निरन्तर प्रकट होती रहती हैं। आप जगत के कारण, अखण्ड, अनादि, अनन्त, आनन्दमय, निर्विकार ब्रह्मस्वरूप हैं। मैं आपकी शरण हूँ।

भगवन् ! आप परमानन्दमूर्ति हैं ऐसा समझकर जो लोग निष्कामभाव से आपका निरन्तर भजन करते हैं, उनके लिए राज्यादि भोगों की अपेक्षा आपके चरणकमलों की प्राप्ति ही भजन का सच्चा फल है। स्वामिन् ! यद्यपि बात ऐसी ही है, तो भी जैसे गौ अपने तुरंत के जन्मे हुए बछड़े को दूध पिलाती और व्याघ्रादि से बचाती रहती है, उसी प्रकार आप भी भक्तों पर कृपा करने के लिए निरन्तर विकल रहने के कारण हम जैसे सकाम जीवों की भी कामना पूर्ण करके संसार-भय से उनकी रक्षा करते रहते हैं।''

ध्रुव की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान नारायण ने कहा : ''उत्तम व्रत का पालन करनेवाले राजकुमार ! मैं तेरे हृदय का संकल्प जानता हूँ। यद्यपि उस अटल पद का प्राप्त होना बहुत कठिन है तो भी मैं तुझे वह पद देता हूँ। तेरा कल्याण हो ! तुझे भोग और मोक्ष दोनों मिलेंगे।''

ध्रुव अपने गृह-नगर की ओर चल पड़े। ध्रुव

के वन जाने के बाद उनके पिता उत्तानपाद बड़े चिंतित हो गये थे एवं अपने-आपको कोसते रहते थे। तब देवर्षि नारद ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा था : ''चिंता मत करो। तुम्हारा पुत्र अटल पदवी पाने के रास्ते पर है।''

जब अपने पुत्र ध्रुव के वन से वापस आने का समाचार उत्तानपाद ने सुना तो वे अत्यंत प्रसन्न हो उठे। वे बड़े प्रेम से उन्हें राजमहल में ले आये।

कुछ काल बीत गया। अपनी वृद्धावस्था आयी हुई जानकर उत्तानपाद ने ध्रुव को राज्य सौंप दिया एवं स्वयं विरक्त होकर वन को चले गये। इससे पहले ध्रुव के भाई उत्तम को भी एक दिन शिकार खेलते समय किसी बलवान् यक्ष ने मार डाला था एवं पुत्रशोक में सुरुचि भी परलोक सिधार गयी थी।

ध्रुव ने अपने पिता का राज्य बड़ी कुशलता से सँभाला। ध्रुव बड़े ही शीलसंपन्न, ब्राह्मणभक्त एवं दीनवत्सल थे और धर्ममर्यादा के रक्षक थे। उनकी प्रजा उन्हें साक्षात् पिता के समान मानती थी। इस प्रकार तरह-तरह के ऐश्वर्य-भोग से पुण्य का और भोगों के त्यागपूर्वक यज्ञादि कर्मों के अनुष्ठान से पाप का क्षय करते हुए उन्होंने पृथ्वी पर शासन किया और अंत में अपने पुत्र को राज्य देकर बदरिकाश्रम चले गये।

वहाँ पर उन्होंने अपने निजस्वरूप का ज्ञान पाकर परम पद में विश्रान्ति पायी और साथ ही ऋषि-मुनियों के लिये भी दुर्लभ प्रभु के अविचल धाम को प्राप्त किया।

जिस पद को योगी लोग वर्षों तक कठोर तप करके भी नहीं पा सकते, उस अविचल धाम को भक्त ध्रुव ने पाँच-छः वर्ष की अवस्था में ही कुछ महीनों की तपस्या से पा लिया!

आज भी आकाश में उत्तर दिशा में स्थित चमचमाता अटल ध्रुवतारा हमें प्रेरणा देता है कि हम अपने अचल सुख, अटल पद को पाने के लिये साधना में दृढ़ता से लग जायें। (समाप्त)

*

द्रव्यशक्ति एवं भावशक्ति

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

दो प्रकार की शक्तियाँ होती हैं : द्रव्यशक्ति और भावशक्ति। द्रव्यशक्ति और भावशक्ति से ही संस्कार बनते हैं... द्रव्यसंस्कार और भावसंस्कार। इन दो शक्तियों के आधार पर ही सबका जीवन चलता है।

अन्न, जल, फल आदि जो द्रव्य हम खाते हैं, उनसे हमारे शरीर को पुष्टि मिलती है। ऋतु के अनुसार हम कोई चीज खाते हैं तो स्वस्थ रहते हैं और ऋतु के विपरीत कुछ खाते हैं तो बीमार होते हैं। स्वास्थ्य के अनुकूल हम कोई चीज खाते हैं तो स्वस्थ रहते हैं, स्वास्थ्य के प्रतिकूल कुछ खाते हैं तो बीमार पड़ते हैं। इसी प्रकार समय के अनुकूल हम कोई चीज खाते हैं तो स्वस्थ रहते हैं किन्तु समय के प्रतिकूल, देर रात्रि से या प्रदोषकाल में कुछ खाते हैं तो बीमार होते हैं। इस द्रव्यशक्ति का प्राकृतिक संबंध हमारे शरीर के साथ है। द्रव्य-शक्ति का सदुपयोग करने से हमारा स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

द्रव्यशक्ति से ऊँची है भावशक्ति। भाव के द्वारा जो अपनेको जैसा मानता है वैसा ही बन जाता है। भावशक्ति बड़ी गजब की है। भावशक्ति से ही स्त्री-पुरुष बनते हैं, भावशक्ति से ही पापी-पुण्यात्मा बनते हैं। इसी शक्ति से हम अपनेको

सुखी-दुःखी मानते हैं। भावशक्ति से ही हम अपनेको तुच्छ या महान् मानते हैं। इसीलिये भावशक्ति का ठीक-ठीक विकास करना चाहिए। सदैव उत्तम भाव करें, मन में कभी हीन या दुःखद भाव न आने दें।

द्रव्यशक्ति की तो कहीं कमी नहीं, खान-पान की चीजें तो सभी देशों में उपलब्ध हैं लेकिन आज विश्व में भावशक्ति की बहुत कमी पड़ रही है। एक आदमी दूसरे आदमी का शोषण करके सुखी होना चाहता है, एक गाँव दूसरे गाँव का गला घोंटकर सुखी होना चाहता है, एक प्रांत दूसरे प्रांत का शोषण करके सुखी होना चाहता है, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को गुलाम बनाकर सुखी होना चाहता है। यह सब आत्मीयतापूर्ण भावशक्ति के अभाव का ही परिणाम है।

शेर ने हाथी के मस्तक का खून पिया है फिर भी जब जंगल में जाता है तो पीछे मुड़-मुड़कर देखता है कि 'कोई मुझे खा न जाये ! कोई मुझे मार न डाले !' अरे कमबख्त ! तूने तो हाथियों को मारा है, तुझे कौन मारने को आ सकता है ? ...लेकिन उसकी हिंसा-प्रवृत्ति ही उसको डराती है। ऐसे ही शोषण करनेवाले अपने-आपको ही शोषित करते रहते हैं।

हराम की कमाई करनेवालों के बेटे-बेटियों एवं परिवारवालों की मति भी वैसी ही हो जाती है। नाहक का धन बहुत-बहुत तो दस साल तक टिकता है, फिर तो उसी प्रकार स्वाहा हो जाता है जैसे रूई के गोदाम में आग लगने पर पूरी रूई स्वाहा हो जाती है। इसीलिए शोषण करके, दगाबाजी-धोखाधड़ी करके धन का ढेर करनेवाले लोग जीवन में दुःखी पाये जाते हैं और जीवन के अंत में देखो तो ठनठनपाल... जबकि हक की कमाई करनेवालों के बेटे-बेटियाँ और परिवारवाले भी सुखी रहते हैं। सबकी भलाई सोचकर आजीविका कमानेवाले एवं आत्मा-परमात्मा की ओर चलनेवाले आप भी सुखी होते हैं और उनके सत्संग-संपर्क में आनेवाले भी खुशहाल होने लगते हैं।

भोग-वासना और बाह्य आडंबर इन्सान को भीतर से खोखला कर देते हैं। आप मन-इन्द्रियों को जैसा पोषण देंगे वैसे ही वे बन जायेंगे। आप इन्द्रियों को जैसा बनाना चाहते हैं, वैसा ही उन्हें पोषण दीजिये। यह है द्रव्यसंस्कार।

अगर आप इन्द्रियों को हल्का दृश्य दिखाओगे तो इन्द्रियाँ उन्हींके अधीन हो जायेंगी। मन को अगर नशीली चीजों की आदत डालोगे तो उसी तरफ उसका झुकाव हो जायेगा। यह है द्रव्यसंस्कार।

भावसंस्कार कैसे डालना ? इसका ज्ञान सत्संग और सत्शास्त्र से मिलता है। इसलिये रोटी नहीं मिले तो चिंता की बात नहीं लेकिन सत्संग रोज मिलना चाहिए। सत्यस्वरूप ईश्वर का जप और ध्यान रोज होना चाहिए। साधना के अनुकूल रोज पवित्र आहार लेना चाहिए। यह है भावसंस्कार।

आप जो द्रव्य खाते हैं एवं जो भाव करते हैं उनमें भी आत्मज्ञान के संस्कार भर दें। द्रव्यसंस्कार और भावसंस्कार दोनों में आत्मज्ञान का सिंचन, सत्य का सिंचन कर दें तो अंत में दोनों का फल सत्यस्वरूप ईश्वर की प्राप्ति हो जायेगी।

द्रव्यसंस्कार और भावसंस्कार दोनों पवित्र होंगे तो पवित्र सुख मिलेगा। यह पवित्र सुख परम पवित्र परमात्मा से मिला देगा। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो अपवित्र सुखाभास मिलेगा और देर-सबेर नरकों के स्वरूप में वह चैतन्य प्रगट होगा।

''बाबाजी ! सर्वत्र एवं सबमें भगवान हैं तो फिर 'यह पवित्र यह अपवित्र... यह करो यह न करो...' ऐसा क्यों ?''

जो आया सो खा लिया, जैसा मन में आया वैसा कर लिया तो फिर जैसा होगा वैसा ही परिणाम आयेगा। यदि आप वास्तविक सुख, पवित्र सुख चाहते हो तो सिद्धांत के अनुसार वहीं चलना पड़ेगा

जहाँ वास्तविक सुख होगा।

'जो आये सो करो...' तो पाप करो, कोई बात नहीं। फिर भगवान नरक के रूप में, परेशानी के रूप में मिलेंगे। जब परेशानी आ जाये तो बोलना कि : 'भगवान परेशानी के रूप में आये हैं।' संतोष मान लेना। पुण्य करोगे तो भगवान सुख के रूप में मिलेंगे, स्वर्ग के रूप में मिलेंगे। आप किसीको सतायेंगे तो भगवान दुश्मन के रूप में प्रगट होंगे और आप किसीको ईमानदारी से स्नेह करोगे तो भगवान मित्र के रूप में प्रगट होंगे। लेकिन अगर ऐसी नजर बनी रही कि 'दुश्मन के रूप में भी मेरा भगवान है' तो दुश्मन हट जायेगा और भगवान रह जायेंगे। आपका भावसंस्कार बन जायेगा, कल्याण हो जायेगा। अन्यथा, दुश्मन के प्रति द्वेष होगा और मित्र के प्रति राग होगा तो फँसोगे।

करणी आपो आपनी के नेड़े के दूर।

अपनी ही करनी से इन्सान सुख के निकट या दूर होता है। अतः बुरे संस्कारों, बुरे कर्मों से बचो। भारत की दिव्य संस्कृति के दिव्य संस्कारों से आप भी सम्पन्न बनो और दूसरों को भी सम्पन्न करो। द्रव्यशक्ति के साथ-साथ अपनी भावशक्ति को इतना ऊँचा बना लो कि इस जगत के भोग तो क्या, स्वर्ग के सुखभोग भी आपको आकर्षित न कर सकें। स्वर्ग की अप्सरा का भोग भी भारत के अर्जुन के आगे तुच्छ था तो इस जगत की प्लास्टिक की पट्टियों (फिल्मों) का भोग क्या चीज है ?

इस लोक और परलोक के सुख से भी बढ़कर जो आत्मसुख है, उसको पाने में ही जो अपनी द्रव्यशक्ति एवं भावशक्ति का उपयोग करता है उसीका जीवन धन्य है।

*

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ९० वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया अप्रैल २००० के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।

एकादशी माहात्म्य

[कामदा एकादशी : १४ अप्रैल २०००]

युधिष्ठिर ने पूछा : वासुदेव ! आपको नमस्कार है ! कृपया आप यह बताइये कि चैत्र शुक्ल पक्ष में किस नाम की एकादशी होती है ?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! एकाग्रचित्त होकर यह पुरातन कथा सुनो, जिसे वशिष्ठजी ने दिलीप के पूछने पर कहा था।

दिलीप ने पूछा : भगवन् ! मैं एक बात सुनना चाहता हूँ। चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में किस नाम की एकादशी होती है ?

वशिष्ठजी बोले : राजन् ! चैत्र शुक्ल पक्ष में 'कामदा' नाम की एकादशी होती है। वह परम पुण्यमयी है। पापरूपी ईंधन के लिये तो वह दावानल ही है।

प्राचीन काल की बात है :

नागपुर नाम का एक सुन्दर नगर था, जहाँ सोने के महल बने हुए थे। उस नगर में पुण्डरीक आदि महा भयंकर नाग निवास करते थे।

पुण्डरीक नाम का नाग उन दिनों वहाँ राज्य करता था। गन्धर्व, किन्नर और अप्सराएँ भी उस नगरी का सेवन करती थीं। वहाँ एक श्रेष्ठ अप्सरा थी, जिसका नाम ललिता था। उसके साथ ललित नामवाला गन्धर्व भी था। वे दोनों पति-पत्नी के रूप में रहते थे। दोनों ही परस्पर काम से पीड़ित रहा करते थे। ललिता के हृदय में सदा पति की ही

मूर्ति बसी रहती थी और ललित के हृदय में सुन्दरी ललिता का नित्य निवास था।

एक दिन की बात है। नागराज पुण्डरीक राजसभा में बैठकर मनोरंजन कर रहा था। उस समय ललित का गान हो रहा था किन्तु उसके साथ उसकी प्यारी ललिता नहीं थी। गाते-गाते उसे ललिता का स्मरण हो आया। अतः उसके पैरों की गति रुक गयी और जीभ लड़खड़ाने लगी।

नागों में श्रेष्ठ कर्कोटक को ललित के मन का सन्ताप ज्ञात हो गया, अतः उसने राजा पुण्डरीक को उसके पैरों की गति रुकने एवं गान में त्रुटि होने की बात बता दी। कर्कोटक की बात सुनकर नागराज पुण्डरीक की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। उसने गाते हुए कामातुर ललित को शाप दिया :

'दुर्बुद्धे ! तू मेरे सामने गान करते समय भी पत्नी के वशीभूत हो गया, इसलिये राक्षस हो जा।'

महाराज पुण्डरीक के इतना कहते ही वह गन्धर्व राक्षस हो गया। भयंकर मुख, विकराल आँखें और देखने मात्र से भय उपजानेवाला रूप। ऐसा राक्षस होकर वह कर्म का फल भोगने लगा।

ललिता अपने पति की विकराल आकृति देख मन-ही-मन बहुत चिन्तित हुई। भारी दुःख से वह कष्ट पाने लगी। सोचने लगी : 'क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मेरे पति पाप से कष्ट पा रहे हैं...'

वह रोती हुई घने जंगलों में पति के पीछे-पीछे घूमने लगी। वन में उसे एक सुन्दर आश्रम दिखाई दिया, जहाँ एक शान्त मुनि बैठे हुए थे। किसी भी प्राणी के साथ उनका बैर-विरोध नहीं था। ललिता शीघ्रता के साथ वहाँ गयी और मुनि को प्रणाम करके उनके सामने खड़ी हुई। मुनि बड़े दयालु थे। उस दुःखिनी को देखकर वे इस प्रकार बोले : 'शुभे ! तुम कौन हो ? कहाँ से यहाँ आयी हो ? मेरे सामने सच-सच बताओ।'

ललिता ने कहा : 'महामुने ! वीरधन्वा नामवाले एक गन्धर्व हैं। मैं उन्हीं महात्मा की पुत्री हूँ। मेरा नाम ललिता है। मेरे स्वामी अपने पाप-दोष के कारण राक्षस हो गये हैं। उनकी यह अवस्था देखकर मुझे चैन नहीं है। ब्रह्मन् ! इस समय मेरा जो कर्त्तव्य हो, वह बताइये। विप्रवर ! जिस पुण्य के द्वारा मेरे पति राक्षसभाव से छुटकारा पा जायें, उसका उपदेश कीजिये।'

ऋषि बोले : 'भद्रे ! इस समय चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की 'कामदा' नामक एकादशी तिथि है, जो सब पापों को हरनेवाली और उत्तम है। तुम उसीका विधिपूर्वक व्रत करो और इस व्रत का जो पुण्य हो, उसे अपने स्वामी को दे डालो। पुण्य देने पर क्षणभर में ही उसके शाप का दोष दूर हो जायगा।'

राजन् ! मुनि का यह वचन सुनकर ललिता को बड़ा हर्ष हुआ। उसने एकादशी को उपवास करके द्वादशी के दिन उन ब्रह्मर्षि के समीप ही भगवान् वासुदेव के (श्रीविग्रह के) समक्ष अपने पति के उद्धार के लिये यह वचन कहा : 'मैंने जो यह कामदा एकादशी का उपवास-व्रत किया है, उसके पुण्य के प्रभाव से मेरे पति का राक्षसभाव दूर हो जाय।'

वशिष्ठजी कहते हैं : ललिता के इतना कहते ही उसी क्षण ललित का पाप दूर हो गया। उसने दिव्य देह धारण कर लिया। राक्षसभाव चला गया और पुनः गन्धर्वत्व की प्राप्ति हुई।

नृपश्रेष्ठ ! वे दोनों पति-पत्नी 'कामदा' के प्रभाव से पहले की अपेक्षा भी अधिक सुन्दर रूप धारण करके विमान पर आरूढ़ होकर अत्यन्त शोभा पाने लगे। यह जानकर इस एकादशी के व्रत का यत्नपूर्वक पालन करना चाहिये।

मैंने लोगों के हित के लिये तुम्हारे सामने इस व्रत का वर्णन किया है। कामदा एकादशी ब्रह्महत्या आदि पापों तथा पिशाचत्व आदि दोषों का नाश करनेवाली है। राजन् ! इसके पढ़ने और सुनने से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है।

['पद्मपुराण' से]

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

उपभोग नहीं, उपयोग करें...

सुबह का समय था। सूर्योदय होने को था। भगवान सूर्य की लाल आभा चारों ओर फैल रही थी। वसंत ऋतु थी। चारों ओर पक्षियों का कलरव सुनाई दे रहा था।

ऐसे वातावरण में लाल टमाटर जैसे चेहरेवाला मुस्कुराता हुआ एवं खुशी के मारे मानों, जमीन से दो फुट ऊपर चलता हुआ युवान गुलाम नबीर हाथ में इत्र लगा एक लिफाफा लिये हुए जा रहा था अपनी प्रेयसी के पास। गुलाम नबीर का प्रेम-विवाह होनेवाला था। शुरू-शुरू में तो परिवारवालों ने विरोध किया लेकिन धीरे-धीरे 'हाँ-ना' करते-करते अंत में अब्बाजान ने मंजूरी दे दी। इसी खुशी में वह उछलता-कूदता अपनी प्रेयसी से मिलने जा रहा था।

उसी मार्ग में एक फकीर अपनी मस्ती में मस्त बैठे थे। फकीर ने कहा :

''गुलाम नबीर ! आज इतने खुश-खुश दिखाई दे रहे हो ! हाथ में यह लिफाफा लेकर कहाँ जा रहे हो ?''

गुलाम नबीर : ''बाबाजी ! क्या बताऊँ... आज मैं कितना खुश हूँ ! मेरे अब्बाजान मेरी शादी के लिये राजी हो गये हैं। इस लिफाफे में एक चिट्ठी है जो मैं अपनी प्रेयसी को देने जा रहा हूँ। चिट्ठी में लिखा है कि : 'अब्बाजान ने 'हाँ' बोल दिया है। तेरी-मेरी शादी पक्की हो गयी है।' अच्छा बाबाजी ! मैं बहुत जल्दी में हूँ... फिर मिलेंगे।''

फकीर ने सोचा : 'यह नादान गुलाम नबीर सांसारिक सुखों को सच्चा मान बैठा है। जिसे वह जीवन की महत्तम खुशी मान बैठा है वह वास्तव में परम दुःखदायी है। ईश्वर को भूलकर और संसार के संबंधों को सच्चा मानकर आज तक कोई सुखी नहीं हुआ है। अनुभव सबसे बड़ा गुरु है। गुलाम नबीर को भी वक्त आने पर असलियत का पता चलेगा।'

सात साल बीत गये। आज फिर से गुलाम नबीर उसी रास्ते से गुजर रहा था लेकिन अब उसका चेहरा पहले जैसा खिला-खिला न था बल्कि एकदम मुरझाये हुए फूल-सा दिखाई दे रहा था। आँखें अन्दर हो गयी थीं। पैरों में फटी-टूटी चप्पलें थीं। दोनों हाथ में एक-एक थाली थी वह भी पैवन्द (चकती) लगायी हुई। आज भी हाथ में एक कागज का टुकड़ा था लेकिन अफसोस कि उसमें कोई शुभ समाचार न थे बल्कि बाजार से सामान लाने की सूची थी : 'एक किलो आलू, एक किलो भिंडी, आधा किलो मसूर की दाल, आधा किलो डालडा घी, एक लीटर मिट्टी का तेल, एक रुपये का लहसुन, दो रूपये का अदरक, एक रूपये का धनिया...'

सात साल पहले जिस बाबा ने गुलाम नबीर को आकाश से बातें करते देखा था, आज उसकी दयनीय हालत देखकर वे पूछ बैठे : ''गुलाम नबीर ! यह क्या हाल बना रखा है ? आज से सात साल पहले तुम क्या थे और आज तुम्हारा चेहरा कितना फीका पड़ गया है ? क्या बात है ?''

गुलाम नबीर : ''बाबाजी ! क्या बताऊँ ? मेरी शादी हो गयी। एक साल के अंदर ही हम अब्बाजान से अलग हो गये। इन सात सालों में पाँच बच्चे हो गये... और काफी उम्मीदें हैं। सारे घर को चलाना और कमानेवाला मैं एक... क्या करता ? बस, चिंता-चिंता में ही ऐसे हाल हो गये हैं। बाबाजी ! सच में, संसार में कुछ सुख नहीं है, दुःख ही दुःख है।''

बाबा : ''अरे, संसार में भी सुख तो है लेकिन

तुझे जीना न आया। जो भरोसा खुदा पर करना चाहिए था, वही भरोसा तूने बीबी-बच्चों पर किया इसीलिये तू दुःखी हुआ। यदि तू थोड़ा संयम से रहा होता, प्रेयसी के हाड़-मांस के शरीर को चाहने के बजाय अपने अल्लाह को प्रेम किया होता तो तू भी परम सुख को पा लेता। नश्वर शरीर से, नश्वर संबंधों से मिलनेवाला सुख नाशवान् होता है जबकि शाश्वत् अल्लाह को पाने का सुख शाश्वत् होता है। जहाँ सुख नहीं था वहाँ सुख खोजने से ही आज तुम्हारा चेहरा इतना मुरझाया हुआ लग रहा है। अगर मियाँ-बीबी साथ में मिलकर संयम-सदाचार भरा जीवन गुजारते और उस परवरदिगार को पाने में एक दूसरे को मददरूप बनते तो तुम्हारे लिये भी संसार सुखद बन जाता।''

मनुष्य को चाहिए कि वह संसार के पदार्थों का उपभोग नहीं, वरन् ईश्वर को पाने में उनका उपयोग कर ले। कर्म भी करे तो मनोनुकूल नहीं वरन् शास्त्रानुकूल करे। मनमाने कर्म करेगा तो फिर मनमाना कर्म उसे इन्द्रिय-सुखों की ओर ले जाकर जन्म-मरण के चक्कर में डाल देगा जबकि शास्त्रानुकूल कर्म करेगा, कर्म में बुद्धि का उपयोग करेगा तो वही कर्म बुद्धिदाता परमात्मा का साक्षात्कार कराने में सहयोगी हो जायेगा, परम सुख की प्राप्ति हो जायेगी और दुःखरूप संसार भी उसके लिये नंदनवन की खबरें देने लगेगा।

*

सुखी व्यक्ति की जूती

हम हैं तो अकर्त्ता, अभोक्ता, द्रष्टा आदि लेकिन पाँच भूतों से बने हुए इस शरीर को 'मैं' मानते हैं और इससे होनेवाली चेष्टाओं को 'मेरी चेष्टा' मानते हैं। फिर अनुकूल परिस्थिति पैदा करना चाहते हैं और प्रतिकूल परिस्थितियाँ हटाकर सदा रहना चाहते हैं।

सदा कोई रहा नहीं, प्रतिकूल परिस्थितियाँ जीते-जी सबकी हटी नहीं और सबकी सब अनुकूल परिस्थितियाँ किसीको मिली नहीं, यह हम मानते जरूर हैं लेकिन जानते नहीं। ऐसा कौन माई का लाल है, जिसकी सब इच्छाएँ पूरी हो गई हों ?

एक आदमी किसी फकीर के पास गया और बोला : ''बाबाजी ! मैं बहुत दुःखी हूँ। शरीर ठीक नहीं रहता, पत्नी का स्वभाव ऐसा है, बेटे कहने में नहीं चलते, जमीन बिकती नहीं है...''

बाबा : ''बेटा ! देख, मैं तेरे सब दुःख मिटा दूँ लेकिन पहले तू किसी सुखी आदमी की जूती ले आ।''

वह आदमी भागता-भागता गया नगरसेठ के पास और बोला : ''सेठजी ! मैं बाद में आपको दस जूतियाँ लाकर दे दूँगा, लेकिन अभी अपनी केवल एक जूती दे दो।''

नगरसेठ : ''भले ले जाओ, पर क्यों ले जाना चाहते हो ?''

आदमी : ''आप सुखी हैं न ! आपकी सब कामनाएँ पूरी हो गयी हैं। आप जो चाहें खरीद सकते हैं, जहाँ चाहें जा सकते हैं। आप सुखी हैं।''

नगरसेठ : ''मुझे तुम सुखी मानते हो भाई ! मैं लगता करोड़पति हूँ किन्तु...''

सेठ की आँखों में पानी आ गया। उन्होंने आँसू पोंछते हुए अपनी दुःखभरी कहानी कह सुनायी। जितना बड़ा सेठ उतना बड़ा दुःख। कहानी सुनकर वह व्यक्ति तो चल पड़ा और पहुँचा जिलाधीश के पास। बोला : ''साहब ! माफ करना। मैं अभी आपकी जूती लाकर देता हूँ, किन्तु थोड़ी देर के लिए ले जाने दो।''

जिलाधीश : ''क्यों भाई ? क्यों ले जाना चाहते हो ?''

आदमी : ''साहब ! आप बड़े सुखी हैं। आपका शासन पूरे जिले पर चलता है।''

जिलाधीश : ''मैं जिलाधीश तो हूँ लेकिन सुखी नहीं हूँ। हमारा सचिव ऐसा ही है, न जाने कब बदली कर दे... धार्मिक स्थानों में खुलेआम बैठ नहीं सकते, सत्संग आदि पवित्र जगहों पर जा नहीं सकते, सहज जीवन जी नहीं सकते, पद-प्रतिष्ठा का खतरा सदैव बना रहता है और छोटी-

मोटी दुःख-दास्तानें हैं, कितनी सुनाऊँ?''

उसने अपनी दुःखभरी दास्तान सुनानी शुरू की। अब किसीके दुखड़े कोई कब तक सुनेगा ?

वह आदमी तो वहाँ से भी चलता भया और जो-जो उसकी निगाहों में सुखी थे उनके पास सप्ताह भर तक घूमता रहा किन्तु कोई सुखी आदमी न मिला। आखिर वह वापस आने लगा तो उसने एक वटवृक्ष के नीचे चादर तानकर सोये हुए एक व्यक्ति से पूछा : ''सुखी हैं कि दुःखी ?''

आवाज आयी : ''न सुखी हूँ न दुःखी हूँ... मैं तो परमानन्दस्वरूप हूँ।''

''इसका मतलब क्या है ?''

''मेरे जैसा दुनिया में कोई भी सुखी नहीं है। मैं परम सुखी हूँ।''

''भाई ! जल्दी से आप मुझे अपनी जूती दे दो।''

उन लेटे हुए महापुरुष ने चादर उठाई और बोले : ''बेटा ! जूती तो मैं रखता ही नहीं, खड़ाऊँ पहनता हूँ। मैं ही वह बाबाजी हूँ जो सप्ताह भर पहले तुझे मिला था।

मैं परम सुखी इसीलिए हूँ कि मैंने संसार को सत्य माना ही नहीं और संसार की भोगेच्छा रखी ही नहीं। तू भी आत्मशांति को बढ़ाते हुए इच्छा-वासना मिटाता जा, तो तू भी परम सुखी हो जायेगा।''

❋

विवेकयुक्त विचार

गुलाम नबीर आर. एम. पी. डॉक्टर था। वह देहात में रहकर लोगों को दवा देता और कमाई करता। कुछ ही समय में उसके पास काफी पैसे हो गये और उसने एक भैंस खरीद ली। जब सुबह चबूतरे पर बैठकर गुलाम नबीर दातुन करता तो उसे रोज विचार आता : 'इस भैंस के सींग कितने सुहावने हैं ! कभी इसकी पीठ पर बैठूँ और यह दौड़े तो कितना मजा आये !' फिर सोचता : 'मैं डॉक्टर हूँ। मेरे लिये यह उचित नहीं है...' ऐसा विचार करते-करते तीन वर्ष बीत गये।

एक दिन जब गुलाम नबीर दातुन करने को बैठा तो वही भूरी भैंस... उसके सुहावने सींग... उसे फिर हुआ कि : 'एक बार, सिर्फ एक बार इस पर बैठ जाऊँ तो कितना मजा आये ! उस दिन गुलाम नबीर अपनेको रोकने में असफल हो गया। आखिर हाँ-ना करते-करते, विचार-विमर्श करते-करते बुद्धि ने मन को साथ दिया, मन ने इन्द्रियों को साथ दिया, हाथों ने भैंस की साँकल खोली और गुलाम नबीर ने भैंस पर छलाँग मारी।

सुबह-सुबह का समय। भूरी भैंस भड़की और गुलाम नबीर को ले भागी। पहली कुछ मिनटों तक तो गुलाम नबीर को बड़ा मजा आया लेकिन ज्यों-ही भैंस ने गति बढ़ायी तो गुलाम नबीर घबरा गया और चिल्लाने लगा : ''बचाओ... ! बचाओ... ! बचाओ... !''

गुलाम नबीर की पुकार सुनकर गाँव के लोग इकट्ठे हो गये। किसीने डंडा उठाया तो किसीने पत्थर उठाया। सब लोग भैंस के पीछे दौड़ने लगे। लोगों को एक साथ दौड़ते हुए देखकर भैंस और भड़की एवं अब तो पूरी गति से दौड़ने लगी।

गाँव के बाहर एक तालाब था, जहाँ भैंस रोज पानी पीने जाती थी। आज भी वहीं जाकर रुकी, तब लोगों ने उसे घेर लिया और गुलाम नबीर को भैंस पर से उतारा। गाँव के मुखिया ने कहा :

''गुलाम नबीर ! तुम पढ़े-लिखे आर. एम. पी. डॉक्टर हो। जरा तो सोचते कि सुबह-सुबह तुम यह क्या करने जा रहे हो ?''

गुलाम नबीर ने कहा : ''देखो, मुखियाजी ! मैं पढ़ा-लिखा हूँ। बिना सोचे-समझे कभी कोई काम नहीं करता हूँ। पिछले तीन साल से सोचने के बाद ही आज मैंने यह कदम उठाया था।''

विचार तो करें लेकिन विवेकयुक्त विचार करें, कामना से आक्रान्त होकर नहीं। अगर कामना से आक्रान्त होकर विचार करेंगे तो हमारा भी वही हाल हो सकता है जो गुलाम नबीर का हुआ।

❋
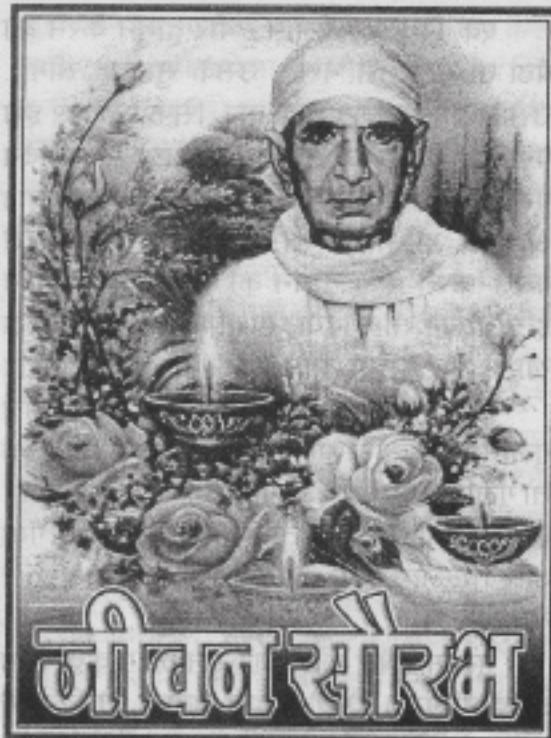
योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री

लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति

[गतांक का शेष]

जीव और शिव का भेद कैसे मिटे ?

१५ जून १९५८, कानपुर।

कानपुर के सत्संग में एक साधक ने प्रश्न पूछा : ''स्वामीजी ! जीवात्मा और परमात्मा में भेद क्यों दिखता है ?''

पूज्य बापू ने एक छोटा-सा किन्तु सचोट उदाहरण देकर सरलता से जवाब देते हुए कहा :

''सच्चे अर्थों में जीवात्मा और परमात्मा दोनों अलग नहीं हैं। जब जीवभाव की अज्ञानता निकल जायेगी और माया की तरफ दृष्टि नहीं डालोगे तब ये दोनों एक ही दिखेंगे। जिस प्रकार थोड़े-से गेहूँ एक डिब्बे में हैं और थोड़े-से गेहूँ एक टोकरी में हैं और तुम बाद में 'डिब्बे के गेहूँ और टोकरी के गेहूँ' इस प्रकार अलग-अलग नाम देते हो परन्तु यदि तुम 'डिब्बा' और 'टोकरी' ये नाम निकाल दो तो बाकी जो रहेगा वह गेहूँ ही रहेगा।''

दूसरा एक सरल दृष्टांत देते हुए पूज्यश्री ने कहा :

''एक गुरु ने एक शिष्य से कहा : 'बेटा ! गंगाजल ले आ।' शिष्य तुरन्त ही गंगा नदी में से एक लोटा पानी भरकर ले आया और गुरुजी को दिया। गुरुजी ने शिष्य से कहा :

'बेटा ! यह गंगाजल कहाँ है ? गंगा के पानी में तो नावें चलती हैं। इसमें नाव कहाँ है ? गंगा में तो लोग स्नान करते हैं। इस पानी में लोग स्नान करते हुए क्यों नहीं दिखते ?'

शिष्य घबरा गया और बोला : 'गुरुजी ! मैं तो गंगा नदी में से ही यह जल लेकर आया हूँ।'

शिष्य को घबराया हुआ देखकर गुरुजी ने धीरे-से कहा : 'बेटा ! घबरा मत। इस पानी और गंगा के पानी में जरा भी भेद नहीं है। केवल मन की कल्पना के कारण ही भिन्नता भासती है। वास्तव में दोनों पानी एक ही हैं और इस पानी को फिर से गंगा में डालेगा तो यह गंगा का पानी हो जायेगा और रत्तीभर भी भेद नहीं लगेगा।

इसी प्रकार आत्मा और परमात्मा भ्रांति के कारण अलग-अलग दिखते हैं, परन्तु दोनों एक ही हैं।'

जिस प्रकार एक कमरे के बाहर की और अन्दर की जमीन अलग-अलग दिखती है लेकिन जो दीवार उस जमीन को अलग करती है वह दीवार पाताल तक तो नहीं गयी है। वास्तव में जमीन में कोई भेद नहीं है। दोनों जमीन तो एक ही हैं परन्तु दीवार की भ्रांति के कारण अलग-अलग नाम से जानी जाती हैं। ऐसी ही बात जीव और ब्रह्म के साथ है।

घट में स्थित आकाश को घटाकाश कहा जाता है और मठ में स्थित आकाश को मठाकाश कहा जाता है। इन दोनों से बाहर जो व्यापक

आकाश है वह महाकाश कहलाता है। घट और मठ की उपाधि से घटाकाश और मठाकाश कहलाते हैं। वास्तव में घटाकाश और मठाकाश महाकाश से भिन्न नहीं हैं। घट टूट जाने के बाद घटाकाश महाकाश में मिल जाता है। घट की उपस्थिति में भी घटाकाश महाकाश से मिला हुआ ही है लेकिन घट की उपाधि के कारण घटाकाश की महाकाश से अलग होने की भ्रांति होती है।''

❋

महा मूर्ख कौन ?

२६ जून १९५८, नैनीताल।

आश्रम में पूज्य स्वामीजी थोड़े-से भक्तों के सामने सत्संग कर रहे थे, तब एक गृहस्थी साधक ने प्रश्न पूछा :

''गृहस्थाश्रम में रहकर प्रभुभक्ति कैसे की जा सकती है ?''

पूज्य स्वामीजी ने प्रश्न का जवाब देते हुए एक सारगर्भित वार्ता कही :

''ज्ञानचंद नामक एक जिज्ञासु भक्त था। वह सदैव प्रभुभक्ति में लीन रहता था। रोज सुबह उठकर पूजा-पाठ, ध्यान-भजन करने का उसका नियम था। उसके बाद वह दुकान में काम करने जाता। दोपहर के भोजन के समय वह दुकान बंद कर देता और फिर दुकान नहीं खोलता था। बाकी के समय में वह साधु-संतों को भोजन करवाता, गरीबों की सेवा करता, साधु-संग एवं दान-पुण्य करता। व्यापार में जो मिलता उसीमें संतोष रखकर प्रभुप्रीति के लिए जीवन बिताता था। उसके ऐसे व्यवहार से लोगों को आश्चर्य होता और लोग उसे पागल समझते। लोग कहते :

'यह तो महा मूर्ख है। कमाये हुए सभी पैसों को दान में लुटा देता है। फिर दुकान भी थोड़ी देर के लिए ही खोलता है। सुबह का कमाई करने का समय भी पूजा-पाठ में गँवा देता है। यह तो पागल ही है।' (क्रमशः)

❋

स्वधर्मे निधनं श्रेयः

❋ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❋

प्रत्येक मनुष्य को अपने धर्म के प्रति श्रद्धा एवं आदर होना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने भी कहा है :

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥

'अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दूसरे के धर्म से गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय को देनेवाला है।' (गीता : ३.३५)

जब भारत पर मुगलों का शासन था, तब की यह घटित घटना है :

चौदह वर्षीय हकीकत राय विद्यालय में पढ़नेवाला सिंधी बालक था। एक दिन कुछ बच्चों ने मिलकर हकीकत राय को गालियाँ दीं। पहले तो वह चुप रहा। वैसे भी सहनशीलता तो हिन्दुओं का गुण है ही... किन्तु जब उन उद्दण्ड बच्चों ने गुरुओं के नाम की और झूलेलाल व गुरु नानक के नाम की गालियाँ देना शुरु किया तब उस वीर बालक से अपने गुरु और धर्म का अपमान सहा नहीं गया।

हकीकत राय ने कहा : ''अब हद हो गयी ! अपने लिये तो मैंने सहनशक्ति का उपयोग किया लेकिन मेरे धर्म, गुरु और भगवान के लिये एक भी शब्द बोलोगे तो यह मेरी सहनशक्ति से बाहर की बात है। मेरे पास भी जुबान है। मैं भी तुम्हें बोल सकता हूँ।''

उद्दण्ड बच्चों ने कहा : ''बोलकर तो दिखा ! हम तेरी खबर ले लेंगे।''

हकीकत राय ने भी उनको दो-चार कटु शब्द सुना दिये। बस, उन्हीं दो-चार शब्दों को सुनकर मुल्ला-

मौलवियों का खून उबल पड़ा। वे हकीकत राय को ठीक करने का मौका ढूँढने लगे। सब लोग एक तरफ और हकीकत राय अकेला दूसरी तरफ।

उस समय मुगलों का ही शासन था इसलिये हकीकत राय को जेल में कैद कर दिया गया।

मुगल शासकों की ओर से हकीकत राय को यह फरमान भेजा गया कि : ''अगर तुम कलमा पढ़ लो और मुसलमान बन जाओ तो तुम्हें अभी माफ कर दिया जायेगा और यदि तुम मुसलमान नहीं बनोगे तो तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर दिया जायेगा।''

हकीकत राय के माता-पिता जेल के बाहर आँसू बहा रहे थे कि : ''बेटा! तू मुसलमान बन जा। कम-से-कम हम तुम्हें जीवित तो देख सकेंगे!'' ...लेकिन उस बुद्धिमान् सिंधी बालक ने कहा :

''क्या मुसलमान बन जाने के बाद मेरी मृत्यु नहीं होगी?''

माता-पिता : ''मृत्यु तो होगी।''

हकीकत राय : ''...तो फिर मैं अपने धर्म में ही मरना पसंद करूँगा। मैं जीते-जी दूसरों के धर्म में नहीं जाऊँगा।''

क्रूर शासकों ने हकीकत राय की दृढ़ता देखकर अनेकों धमकियाँ दीं लेकिन उस बहादुर किशोर पर उनकी धमकियों का जोर न चल सका। उसके दृढ़ निश्चय को पूरा राज्य-शासन भी न डिगा सका।

अंत में मुगल शासक ने उसे प्रलोभन देकर अपनी ओर खींचना चाहा लेकिन वह बुद्धिमान् व वीर किशोर प्रलोभनों में भी नहीं फँसा।

आखिर क्रूर मुसलमान शासकों ने आदेश दिया कि : ''अमुक दिन बीच मैदान में हकीकत राय का शिरोच्छेद किया जायेगा।''

उस वीर हकीकत राय ने गुरु का मंत्र ले रखा था। गुरुमंत्र जपते-जपते उसकी बुद्धि सूक्ष्म हो गयी थी। वह चौदह वर्षीय किशोर जल्लाद के हाथ में चमचमाती हुई तलवार देखकर जरा भी भयभीत न हुआ वरन् वह अपने गुरु के दिये हुए ज्ञान को याद करने लगा कि : 'यह तलवार किसको मारेगी? मार-मारकर इस पंचभौतिक शरीर को ही तो मारेगी और ऐसे पंचभौतिक शरीर तो कई बार मिले और कई बार मर गये। ...तो क्या यह तलवार मुझे मारेगी? नहीं। मैं तो अमर आत्मा हूँ... परमात्मा का सनातन अंश हूँ। मुझे यह कैसे मार सकती है? ॐ... ॐ... ॐ...'

हकीकत राय गुरु के इस ज्ञान का चिंतन कर रहा था, तभी क्रूर काज़ियों ने जल्लाद को तलवार चलाने का आदेश दिया। जल्लाद ने तलवार उठायी लेकिन उस निर्दोष बालक को देखकर उसकी अंतरात्मा थरथरा उठी। उसके हाथों से तलवार गिर पड़ी और हाथ काँपने लगे।

काज़ी बोले : ''तुझे नौकरी करनी है कि नहीं? यह तू क्या कर रहा है?''

तब हकीकत राय ने अपने हाथों से तलवार उठायी और जल्लाद के हाथ में थमा दी। फिर वह किशोर हकीकत राय आँखें बंद करके परमात्मा का चिंतन करने लगा : 'हे अकाल पुरुष! जैसे साँप केंचुली का त्याग करता है वैसे ही मैं यह नश्वर देह छोड़ रहा हूँ। मुझे तेरे चरणों की प्रीति देना ताकि मैं तेरे चरणों में पहुँच जाऊँ... फिर से मुझे वासना का पुतला बनकर इधर-उधर न भटकना पड़े... अब तू मुझे अपनी ही शरण में रखना... मैं तेरा हूँ... तू मेरा है... हे मेरे अकाल पुरुष!'

इतने में जल्लाद ने तलवार चलायी और हकीकत राय का सिर धड़ से अलग हो गया।

हकीकत राय ने १४ वर्ष की नन्हीं-सी उम्र में धर्म के लिये अपनी कुर्बानी दे दी। उसने शरीर छोड़ दिया लेकिन धर्म न छोड़ा।

गुरु तेगबहादुर बोलिया,
सुनो सिखों! बड़भागिया,
धड़ दीजे धरम न छोड़िये...

हकीकत राय ने अपने जीवन में यह चरितार्थ करके दिखा दिया।

हकीकत राय तो धर्म के लिये बलिवेदी पर चढ़ गया लेकिन उसकी कुर्बानी ने सिंधी समाज के हजारों-लाखों जवानों में एक जोश भर दिया कि :

'धर्म की खातिर प्राण देना पड़े तो देंगे लेकिन विधर्मियों के आगे कभी नहीं झुकेंगे। भले अपने धर्म में भूखे मरना पड़े तो स्वीकार है लेकिन परधर्म को कभी स्वीकार नहीं करेंगे।'

ऐसे वीरों के बलिदान के फलस्वरूप ही हमें आजादी प्राप्त हुई है और ऐसे लाखों-लाखों प्राणों की आहुति द्वारा प्राप्त की गयी इस आजादी को हम कहीं व्यसन, फैशन एवं चलचित्रों से प्रभावित होकर गँवा न दें! अब देशवासियों को सावधान रहना होगा।

भगवद्गीता के चौथे अध्याय का माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं: प्रिये! अब मैं चौथे अध्याय का माहात्म्य बतलाता हूँ, सुनो। भागीरथी के तट पर वाराणसी (बनारस) नाम की एक पुरी है। वहाँ विश्वनाथजी के मन्दिर में भरत नाम के एक योगनिष्ठ महात्मा रहते थे, जो प्रतिदिन आत्मचिन्तन में तत्पर हो आदरपूर्वक गीता के चतुर्थ अध्याय का पाठ किया करते थे। उसके अभ्यास से उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया था। वे शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों से कभी व्यथित नहीं होते थे।

एक समय की बात है। वे तपोधन नगर की सीमा में स्थित देवताओं के दर्शन करने की इच्छा से भ्रमण करते हुए नगर से बाहर निकल गये। वहाँ बेर के दो वृक्ष थे। उन्हीं के तने में वे विश्राम करने लगे। एक वृक्ष के तने में उन्होंने अपना मस्तक रखा था और दूसरे वृक्ष के तने में उनका एक पैर टिका हुआ था। थोड़ी देर बाद जब वे तपस्वी चले गये तब बेर के वे दोनों वृक्ष पाँच-छः दिनों के भीतर ही सूख गये। उनमें पत्ते और डालियाँ भी नहीं रह गयीं। तत्पश्चात् वे दोनों वृक्ष कहीं ब्राह्मणों के पवित्र गृह में दो कन्याओं के रूप में उत्पन्न हुए।

वे दोनों कन्याएँ जब बढ़कर सात वर्ष की हो गयीं, तब एक दिन उन्होंने दूर देशों से घूमकर आते हुए भरत मुनि को देखा। उन्हें देखते ही वे दोनों उनके चरणों में पड़ गयीं और मीठी वाणी में बोलीं : ''मुने ! आपकी ही कृपा से हम दोनों का उद्धार हुआ है। हमने बेर की योनि त्यागकर मानव-शरीर प्राप्त किया है।'' उनके इस प्रकार कहने पर मुनि को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा : ''पुत्रियों ! मैंने कब और किस साधन से तुम्हें मुक्त किया था ? साथ ही यह भी बताओ कि तुम्हारे बेर के वृक्ष होने में क्या कारण था ? क्योंकि इस विषय में मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है।''

तब वे कन्याएँ पहले उन्हें अपने बेर हो जाने का कारण बतलाती हुई बोलीं : ''मुने ! गोदावरी नदी के तट पर छिन्नपाप नाम का एक उत्तम तीर्थ है, जो मनुष्यों को पुण्य प्रदान करनेवाला है। वह पावनता की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ है। उस तीर्थ में सत्यतपा नामक एक तपस्वी बड़ी कठोर तपस्या कर रहे थे। वे ग्रीष्म ऋतु में प्रज्वलित अग्नियों के बीच में बैठते थे, वर्षाकाल में जल की धाराओं से उनके मस्तक के बाल सदा भीगे ही रहते थे तथा जाड़े के समय जल में निवास करने के कारण उनके शरीर के रोंगटे हमेशा खड़े रहते थे। वे बाहर-भीतर से सदा शुद्ध रहते, समय पर तपस्या करते तथा मन और इन्द्रियों को संयम में रखते हुए परम शान्ति प्राप्त करके आत्मा में ही रमण करते थे। वे अपनी विद्वत्ता के द्वारा जैसा व्याख्यान करते थे, उसे सुनने के लिये साक्षात् ब्रह्माजी भी प्रतिदिन उनके पास उपस्थित होते और प्रश्न करते थे। ब्रह्माजी के साथ उनका संकोच नहीं रह गया था, अतः उनके आने पर भी वे सदा तपस्या में मग्न रहते थे। परमात्मा के ध्यान में निरन्तर संलग्न रहने के कारण उनकी तपस्या सदा बढ़ती रहती थी। सत्यतपा को जीवन्मुक्त के समान मानकर इन्द्र को अपने समृद्धिशाली पद के सम्बन्ध में कुछ भय हुआ। उन्होंने उनकी तपस्या में सैकड़ों विघ्न डालने आरम्भ किये। अप्सराओं के समुदाय से हम दोनों को बुलाकर इन्द्र ने इस प्रकार आदेश दिया : 'तुम दोनों उस तपस्वी की तपस्या में विघ्न डालो, जो मुझे इन्द्रपद से हटाकर स्वयं स्वर्ग का राज्य भोगना चाहता है।'

इन्द्र का यह आदेश पाकर हम दोनों उनके सामने से चलकर गोदावरी के तीर पर, जहाँ वे मुनि तपस्या करते थे, आयीं। वहाँ मन्द एवं गम्भीर स्वर से बजते हुए मृदंग तथा मधुर वेणुनाद के साथ हम दोनों ने अन्य अप्सराओं सहित मधुर स्वर में गाना आरम्भ किया। इतना ही नहीं, उन योगी महात्मा को वश में करने के लिये हम लोग स्वर, ताल और लय के साथ नृत्य भी करने लगीं। बीच-बीच में जरा-जरा-सा अंचल खिसकने पर उन्हें हमारी छाती भी दीख जाती थी। हम दोनों की उन्मत्त गति कामभाव का उद्दीपन करनेवाली थी, किन्तु उसने उन निर्विकार चित्तवाले महात्मा के मन में क्रोध का संचार कर दिया। तब उन्होंने हाथ से जल छोड़कर हमें क्रोधपूर्वक शाप दिया : 'अरी ! तुम दोनों गंगाजी के तट पर बेर के वृक्ष हो जाओ।' यह सुनकर हम लोगों ने बड़ी विनय के साथ कहा : 'महात्मन् ! हम दोनों पराधीन थीं, अतः हमारे द्वारा जो दुष्कर्म बन गया है, उसे आप क्षमा करें।' यों कहकर हमने मुनि को प्रसन्न कर लिया। तब उन पवित्र चित्तवाले मुनि ने हमारे शापोद्धार की अवधि निश्चित करते हुए कहा : 'भरत मुनि के आने तक ही तुम पर यह शाप लागू होगा। उसके बाद मर्त्यलोक में तुम लोगों का जन्म होगा और पूर्वजन्म की स्मृति बनी रहेगी।'

मुने ! जिस समय हम दोनों बेरवृक्ष के रूप में खड़ी थीं, उस समय आपने हमारे समीप आकर गीता के चौथे अध्याय का जप करते हुए हमारा उद्धार किया था, अतः हम आपको प्रणाम करती हैं। आपने गीता के चतुर्थ अध्याय के पाठ द्वारा केवल शाप से ही नहीं, इस भयानक संसार से भी हमें मुक्त कर दिया।''

श्रीभगवान् कहते हैं : उन दोनों के इस प्रकार कहने पर मुनि बहुत ही प्रसन्न हुए और उनसे पूजित हो विदा लेकर जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। वे कन्याएँ भी बड़े आदर के साथ प्रतिदिन गीता के चतुर्थ अध्याय का पाठ करने लगीं, जिससे उनका उद्धार हो गया। [पद्म० पाताल खण्ड]

'ऋषि प्रसाद' ऋषियों की वाणी

'ऋषि प्रसाद' ऋषियों की वाणी, आत्म संदेशा लायी है ।
घट-घट में है अलख जगाने, द्वार तुम्हारे आयी है ॥
ऋषि प्रसाद...

स्वस्थ सुखी जीवन की कुंजी, अपने भीतर लायी है ।
योग बोध और प्रेम की गंगा, स्नान कराने आयी है ॥
ऋषि प्रसाद...

सद्गुरु के अनुभव की वाणी, तुम्हें जगाने आयी है ।
तुम्हें जगाना उद्देश्य है मेरा, यही नाद करते आयी है ॥
ऋषि प्रसाद...

निश्चिंत सरल आनंदित जीवन, आत्म विश्रांति पाने की ।
अनुभूति की यह अनुभव वाणी, घर घर में पहुँचानी है ॥
ऋषि प्रसाद...

❋

है प्रार्थना गुरुदेव यह

है प्रार्थना गुरुदेव यह, सबसे हमें तू प्यार दे ।
ना द्वेष हो किसीके प्रति, ना कामना नश्वर की हो ॥
संसार की यदि आग में, तपते रहे सहते रहे ।
नित ध्यान हमको यह रहे, तेरे ही गुण गाते रहें ॥
हो अंत में यह ही स्मृति, तेरे ही दर पर हम टिकें ।
हृदयों में दर्शन तेरा फिर, यह प्राण चल दे या रुके ॥
संसार यह तेरी कृति, सुन ले हमारी ये विनती ।
कोई भी सुख-सुविधा मिले, बिसरे न कभी तेरी स्मृति ॥
तेरी स्मृति तो बस अभी, तिनका एक आधार है ।
बाकी तो सारी सृष्टि है, पर प्राण बिन व्यापार है ॥
नहीं युक्तता कोई नजर, इस देह की अब शेष है ।
तेरे कृपा आशिष बिन, जलते हुए अवशेष हैं ॥
चरणों में तेरे अब शरण, आये तो हैं दाता जो हम ।
कर दे कृपा न हो खफा, खुशी के मारे नाचेंगे हम ॥

- चंद्रशेखर रामकृष्ण कुलकर्णी, सतारा (महा.)

सुखपूर्वक प्रसवकारक मंत्र

''ऐं ह्रीं भगवति भगमालिनि चल चल भ्रामय भ्रामय पुष्पं विकासय विकासय स्वाहा ।''

इस मंत्र द्वारा अभिमंत्रित दूध गर्भिणी स्त्री को पिलायें तो सुखपूर्वक प्रसव होगा ।

शक्तिशाली व गोरे पुत्र की प्राप्ति के लिए

सगर्भावस्था में ढाक (पलाश, खाखरा) का एक कोमल पत्ता घोटकर गौ-दुग्ध के साथ रोज सेवन करने से बालक शक्तिशाली और गोरा होता है । माता-पिता भले काले-कलूटे हों फिर भी बालक गोरा होगा ।

पाठकों के लिए आवश्यक निवेदन

आश्रम के साथ पत्र-व्यवहार करते समय संबंधित विभाग का नाम अवश्य लिखें ।

ये विभाग इस प्रकार हैं : (१) अपना अनुभव, गीत, कविता, भजन, संस्था समाचार, फोटोग्राफ्स एवं प्रकाशन योग्य अन्य सामग्री 'सम्पादक-ऋषि प्रसाद' के नाम पर प्रेषित करें । (२) पत्रिका न मिलने तथा पते में परिवर्तन हेतु 'शिकायत विभाग-ऋषि प्रसाद' के नाम पत्र प्रेषित करें । (३) साहित्य, चूर्ण, कैसेट, फोटो आदि प्राप्ति हेतु 'श्री योग वेदान्त सेवा समिति' के नाम पर पत्र प्रेषित करें । (४) साधना संबंधी मार्गदर्शन हेतु 'साधक विभाग' के नाम पर लिखें । (५) स्थानीय समिति की मासिक रिपोर्ट, सत्प्रवृत्ति संचालन की जानकारी एवं समिति से संबंधित समस्त कार्यों के लिये 'अखिल भारतीय योग वेदान्त सेवा समिति' के नाम पर लिखें । (६) अनुष्ठान तथा आश्रम में ठहरने के लिए 'साधक निवास' के नाम पर लिखें । (७) स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्त प्रकार के पत्रव्यवहार 'वैद्यराज, साँई श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, संत श्री आसारामजी आश्रम, वरीयाव रोड, जहाँगीरपुरा, सूरत (गुजरात) के पते पर करें ।

पत्र में अपना पूरा पता तथा पिनकोड अवश्य लिखें जिससे आपको तुरंत जवाब मिल सके ।

भूल सुधार

'ऋषि प्रसाद' के जनवरी अंक नंबर ८५ में पृष्ठ नंबर २६ पर दिये हुए विद्याप्राप्ति के लिए सिद्ध हयग्रीव मंत्र के साथ गुडुच्यादि प्रयोग में कृपया मंत्र सुधारकर इस प्रकार पढ़ें : **ॐ ऐं ह्रीं ह्रीं हयग्रीवाय नमो मां विद्यां देहि देहि बुद्धिं वर्द्धय वर्द्धय हुं फट् स्वाहा ।**

तरबूज

ग्रीष्म ऋतु का फल तरबूज प्रायः पूरे भारत में पाया जाता है। पका हुआ लाल गूदेवाला तरबूज स्वाद में मधुर, गुण में शीतल, पित्त एवं गर्मी का शमन करनेवाला, पौष्टिकता एवं तृप्ति देनेवाला, पेट साफ करनेवाला, मूत्रल एवं कफकारक है।

कच्चा तरबूज गुण में ठंडा, दस्त को रोकनेवाला, कफकारक, पचने में भारी एवं पित्तनाशक है।

तरबूज के बीज शीतवीर्य, शरीर में स्निग्धता बढ़ानेवाले, पौष्टिक, मूत्रल, गर्मी का शमन करनेवाले, कृमिनाशक, दिमागी शक्ति बढ़ानेवाले, दुर्बलता मिटानेवाले, किडनी की कमजोरी दूर करनेवाले, गर्मी की खांसी एवं ज्वर को मिटानेवाले, क्षय एवं मूत्ररोगों को दूर करनेवाले हैं। बीज के सेवन की मात्रा हररोज १० से २० ग्राम है। **ज्यादा बीज खाने से तिल्ली को हानि होती है।**

विशेष : गर्म तासीरवालों के लिए तरबूज एक उत्तम फल है लेकिन कफ प्रकृतिवालों के लिए हानिकारक है। अतः सर्दी-खांसी, श्वास, मधुप्रमेह, कोढ़, रक्तविकार के रोगियों को इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु में दोपहर के भोजन के २-३ घंटे बाद तरबूज खाना लाभदायक है। यदि तरबूज खाने के बाद कोई तकलीफ हो तो शहद अथवा गुलकंद का सेवन करें।

❊ औषधि-प्रयोग ❊

१. पित्त विकार : खून की उल्टी, अत्यंत जलन एवं दाह होने पर, एसिडिटी, अत्यंत प्यास लगने पर, गर्मी के ज्वर में, टायफायड में प्रतिदिन तरबूज के रस में मिश्री डालकर लेने से लाभ होता है।

२. मूत्रदाह : पके हुए तरबूज की एक फाँक बीच से निकालकर उसके अंदर पीसी हुई मिश्री बुरबुरा दें और वह निकली हुई फाँक फिर से कटे हुए भाग पर रख दें। उसे रात्रि में खुली छत पर रखें। सुबह उसके लाल गूदे का रस निकालें। यह रस सुबह-शाम पीने से मूत्रदाह, रुक-रुककर मूत्र आना, मूत्रेन्द्रिय पर गर्मी के कारण फुंसी का होना आदि मूत्रजन्य रोगों में लाभ होता है।

३. गोनोरिया (सूजाक) : तरबूज के १०० ग्राम रस में पिसा हुआ जीरा एवं मिश्री डालकर सुबह-शाम पीने से लाभ होता है।

४. गर्मी का सिरदर्द : तरबूज के रस में मिश्री तथा इलायची अथवा गुलाबजल मिलाकर दोपहर एवं शाम को पीने से पित्त, गरमी अथवा लू के कारण होनेवाले सिरदर्द में लाभ होता है। हृदय की बढ़ी हुई धड़कनें सामान्य होती हैं एवं दुर्बलता अथवा तीव्र ज्वर के कारण आयी हुई मूर्च्छा में भी लाभ होता है।

५. पागलपन : यहाँ मूत्रदाह में दिया गया प्रयोग अपनायें। उस रस में ब्राह्मी के ताजे पत्तों का रस अथवा चूर्ण एवं दूध मिलायें। आवश्यकतानुसार मिश्री मिलाकर एक से तीन महीने तक रोगी को पिलायें। साथ ही तरबूज के बीज का गर्भ १० ग्राम की मात्रा में रात्रि में पानी में भिगोयें। सुबह पीसकर उसमें मिश्री, इलायची मिला लें और मक्खन के साथ दें। इससे पागलपन अथवा गर्मी के कारण होनेवाली दिमागी कमजोरी में लाभ होगा।

६. भूख बढ़ाने हेतु : तरबूज के लाल गूदे में कालीमिर्च, जीरा एवं नमक का चूर्ण बुरबुराकर खाने से भूख खुलती है एवं पाचनशक्ति बढ़ती है।

७. पौष्टिकता के लिये : तरबूज के बीज के गर्भ का चूर्ण बना लें। गर्म दूध में शक्कर तथा १ चम्मच यह चूर्ण डालकर उबाल लें। इसके प्रतिदिन सेवन से देह पुष्ट होती है।

- वैद्यराज अमृतभाई

साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, संत श्री आसारामजी आश्रम, जहाँगीरपुरा, वरियाव रोड, सूरत।

❊

''तरबूज के प्रतिदिन सेवन से देह तो पुष्ट होती है पर यह भी स्मरण रखें कि देह नश्वर है... आत्मा अमर है। देह को पुष्ट रखेंगे, पर आत्मप्रीति बढ़ाएँगे।''

- पूज्यश्री

बड़दादा की मिट्टी व जल से जीवनदान

अगस्त '९८ में मुझे मलेरिया हुआ । उसके बाद पीलिया हो गया । मेरे बड़े भाई ने आश्रम से प्रकाशित 'आरोग्यनिधि' पुस्तक से मंत्र पढ़कर पीलिया तो उतार दिया । कुछ ही दिनों बाद अंग्रेजी दवाओं के 'रिएक्शन' से दोनों किडनियाँ 'फेल' हो गईं। मेरा 'हार्ट' और 'लिवर' भी 'फेल' होने लगा। डॉक्टरों ने तो कह दिया कि यह लड़का बच नहीं सकता। फिर मुझे गोंदिया से नागपुर हॉस्पिटल में ले गये ताकि कुछ तो हो सके लेकिन वहाँ से भी जवाब दे दिया कि अब कुछ नहीं हो सकता। मेरे भाई मुझे वहीं छोड़कर सूरत आश्रम आये, वैद्यजी से मिले और बड़दादा की परिक्रमा करके प्रार्थना की। वहाँ से मिट्टी और जल लिया। डॉक्टर ८ तारीख को मेरी किडनी बदलनेवाले थे । ७ तारीख को मेरे भाई लौटे । बड़दादा को जब मेरे भाई प्रार्थना कर रहे थे तभी से मुझे आराम मिलना शुरु हो गया था। भाई ने आकर मुझे मिट्टी लगाई, जल पिलाया और मेरी दोनों किडनियाँ स्वस्थ हो गईं । मुझे जीवनदान मिल गया । अब मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ ।

- प्रवीण पटेल, गोंदिया (महा.).

*

पूज्य बापू ने फेंका कृपा-प्रसाद

कुछ वर्ष पूर्व पूज्य बापू राजकोट आश्रम में पधारे थे । तब आश्रम नया-नया बन रहा था । मुझे उन दिनों निकट से दर्शन करने का सौभाग्य मिला । उस समय मुझे छाती में दर्द रहता था, जिसे 'एन्आयना प्रेक्टोसिस' कहते हैं । मैं सत्संग सुन रहा था । थोडी देर बाद सत्संग पूरा हुआ तो मैं बैठा ही रहा । कुछ लोग पूज्य बापू के पास एक-एक करके जा रहे थे । मैं कुछ फल-फूल लाया नहीं था इसलिए श्रद्धा के फूल लिए बैठा था। पूज्य बापू सबको प्रसाद दे रहे थे इतने में एक चीकू मेरी छाती पर लगा और छाती का वह दर्द हमेशा के लिए मिट गया ।

- अरविंदभाई वसावड़ा, राजकोट ।

औरंगाबाद (महा) : २८ फरवरी । संत एकनाथजी महाराज, ज्ञानेश्वर महाराज, संत तुकारामजी, समर्थ रामदास आदि अनेक संतों की अवतरण-स्थली महाराष्ट्र के अनेक नगरों में पूज्य गुरुदेवश्री के सत्संग-प्रवचन संपन्न हुए।

औरंगाबाद में संत श्री आसारामजी आश्रम का प्रांगण भक्त-समुदाय से खचाखच भर गया था । भक्तों में ज्ञानामृतवर्षा करते हुए परमात्मनिष्ठ पूज्यपाद बापू ने कहा :

''धन से, सत्ता से दुःख नहीं मिटता। दुःख तो मिटता है दुःखहारी प्रभु के ज्ञान से।''

अहमदनगर (महा.) : २९ फरवरी । श्री सुरेशानंदजी के प्रवचन की पूर्णाहुति पूज्यश्री के सत्संग के साथ हुई । पूर्णाहुति-सत्संग के दौरान पूज्यश्री ने पान-मसाला आदि का व्यसन करनेवाले श्रोताओं से दक्षिणा की माँग करते हुए कहा : **''आपने व्यसन छोड़ने का वचन दिया तो मैं समझूँगा कि मुझे दक्षिणा मिल गई।''**

धूम्रपान, गुटखा आदि व्यसनों के चंगुल में फँसे हुए हजारों लोगों ने हाथ उठाकर उन व्यसनों के त्याग का वचन दिया। उनकी सज्जनता का यह परिचय पाकर प्राणिमात्र के परम हितैषी संतश्री ने उन्हें प्रभुमार्ग पर अग्रसर होने का प्रेरणा-प्रसाद दिया। पूज्यश्री ने शंखनाद कर सबके हृदयों में अपना शुभ संकल्प प्रवाहित किया।

व्यसन छुड़ाकर आध्यात्मिकता का पावन व्यसन दिया इन प्यारे संत ने । साधकों को ध्यानयोग में अनुभव के द्वार खुलने पर कभी प्रकाश होगा कभी हास्य होगा, कभी विरह कभी मधुर वेदन, कभी अपने भूत-भविष्य का तो कभी औरों के मन की बात का कुछ अंश में पता चलेगा, कभी दिव्य सृष्टि के द्वार खुलने पर भी वे अनुभव होते हैं, जिनका यहाँ विस्तार व वर्णन संभव नहीं है। अनजान लोग भूत-पिशाच समझकर ऐसे भक्त साधकों को भुए-भोपों से खामखाह पिटवाते हैं अथवा तो करंट और इंजेक्शनों के द्वारा उनके स्वास्थ्य से खिलवाड़ करते हैं। भावना का इलाज औषध से नहीं, दिव्य भावों से होता है और सच्ची साधनाओं से भावनाओं का सदुपयोग किया जाता है। अहमदनगर के प्यारे सत्संगियों को इस प्रकार पूज्यश्री ने संकेत दिये।

पूना (महा.) : १ मार्च। श्री वासुदेवानंदजी के प्रवचन की पूर्णाहुति पूज्य गुरुदेवश्री के सत्संग के साथ हुई। मानव जीवन में भक्ति की महत्ता पर पूज्य गुरुदेवश्री ने प्रकाश डाला।

आधुनिक चलचित्रों के दुष्प्रभाव से सावधान करते हुए पूज्यश्री ने कहा : **''जो फिल्में देखकर सुखी होना चाहते हैं वे दुःखी होते हैं तथा घर में खटपट बढ़ती है।''**

नाशिक (महा.) : २ से ५ मार्च। त्र्यंबकेश्वर ज्योतिर्लिंग के आध्यात्मिक तरंगों से तरंगित इस भूमि पर चार दिनों तक सत्संग-प्रवाह चलता रहा। महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर भोलेनाथ के पूजन-अर्चन व रात्रि-जागरण की महिमा पूज्यश्री ने बताई। पूज्य गुरुदेवश्री ने कहा :

''यह मिठाई खाने का नहीं, व्रत-उपवास का उत्सव है... भोग से हटकर योग की ओर बढ़ने का उत्सव है।''

बोईसर (मुंबई) : १० मार्च। मुंबई स्थित इस क्षेत्र में दो दिन श्री सुरेशानंदजी के प्रवचन हुए। ११ मार्च को अमृतवर्षा करते हुए पूज्यश्री ने जीवन में एकाग्रता व अंतर्मुखता के महत्त्व पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा : **''जीवन में सर्वांगीण सफलता की अचूक कुंजी है अन्तर्मुखता।''** अन्तर्मुख होने की अनुभूत युक्तियाँ पूज्यश्री द्वारा बतायी गयीं।

टीमा हॉस्पिटल का उद्घाटन समारंभ ९ मार्च को पूज्यश्री के करकमलों द्वारा संपन्न हुआ। पूज्यश्री के आशीर्वचन एवं प्रसंगोचित प्रवचन सुनकर लोगों को महसूस हुआ सत्कर्म का महत्त्व। जीवन के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए सभी को निष्काम कर्म की अनिवार्य आवश्यकता है। डॉक्टरों को, नर्सों को और हॉस्पिटल में काम करनेवाले कर्मचारियों को सद्भावना से काम करने की प्रेरणा मिली। आनेवाले गरीबों में अपने प्रभु को देखने की पैनी दृष्टि डॉक्टर और उनके सहायक साथी अपना लें तो उनका यह धंधा भी कर्मयोग बन जाये। ऐसी सुंदर सलाह और सत्संग के साथ सात्त्विक उद्घाटन संपन्न हुआ।

दमण : ११ मार्च। दरिया किनारे स्थित इस केन्द्रशासित क्षेत्र में देवका रोड पर पूज्य गुरुदेवश्री का सत्संग-प्रवचन सम्पन्न हुआ। यहाँ आश्रम निर्माणाधीन है।

कोलक (गुज.) : ११ मार्च। वलसाड़ जिला स्थित इस ग्राम में भाविक भक्तों ने अपने इलाके में एक साधनास्थली का निर्माण किया। जो सत्संग-साधना के लिए दूर-दराज न जा सकें वे अपने ही गाँव-घर के पास प्यारे प्रभु का, सच्चे संत का सत्संग-लाभ ले सकें इस ऊँचे उद्देश्य से 'संत श्री आसारामजी सत्संग-भवन' का उद्घाटन करवाया पूज्यश्री के पवित्र करकमलों से।

डुँगरा (वापी-गुज.) : ११ और १२ मार्च। बोईसर, दमण, कोलक के सत्संगप्रेमियों के बीच सत्संगवर्षा करते हुए गुरुदेव 'संत श्री आसारामजी आश्रम-वापी' पहुँचे जहाँ हजारों भक्त दर्शन-सत्संग की प्रतीक्षा में पलकें बिछाए हुए थे।

इस प्रकार एक ही दिन में चार स्थानों में पूज्यश्री के प्रवचन हुए। पूज्यश्री ने दुर्लभ मानव जीवन में सत्संग की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा :

''जिसको अपने जीवन के मूल्य का पता है वह सत्संग का महत्त्व जानता है। जिसे अपने जीवन के ही मूल्य का पता नहीं, वह सत्संग का मूल्य नहीं समझता।''

१२ मार्च को यहाँ सत्संग-प्रवचन की पूर्णाहुति करते हुए पूज्यश्री भैरवी के लिए रवाना हुए। रास्ते में ऊँचे विचारों के पुण्यात्माओं ने 'अपने इलाके में सत्संग-लाभ मिलता रहे' इस पुण्यमय उद्देश्य से पारडी व तिथल रोड (जि. वलसाड़) पर 'संत श्री आसारामजी सत्संग-भवन' का उद्घाटन पूज्यश्री के करकमलों से करवाया।

भैरवी (गुज.) : १३ मार्च। यहाँ 'मौन साधना आश्रम' में नवनिर्मित गुरुमंदिर का उद्घाटन, सत्संग-प्रवचन व भंडारा कार्यक्रम संपन्न हुआ। पूज्यश्री ने दूर-सुदूर क्षेत्रों से बड़ी संख्या में आये हुए भक्तजनों को संबोधित करते हुए कहा :

''कष्ट, विघ्न, पीड़ा, बाधाएँ जीवनपुष्प को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनसे विचलित न होकर धैर्य व साहसपूर्वक इनका सामना करें।''

धरमपुर (गुज.) : १४ मार्च। वलसाड़ जिला स्थित नवनिर्मित 'संत श्री आसारामजी आश्रम' का उद्घाटन, ब्रह्मलीन स्वामी श्री लीलाशाहजी बापू का मूर्ति-प्रतिष्ठापन तथा श्री राधाकृष्ण-मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा पूज्य गुरुदेवश्री के करकमलों से संपन्न हुई।

व्यारा (गुज.) : १५ मार्च। पूज्य गुरुदेवश्री के आत्मस्पर्शी सत्संग-प्रवचन व भण्डारे का आयोजन स्थानीय योग वेदान्त सेवा समिति के तत्त्वावधान में संपन्न हुआ। यहाँ के सत्संग की 'सुयशा कथा कैसेट' गुजराती भाषा में है। वह सभी को सुनने के लिए लालायित करे ऐसी कैसेट है।

सूरत (गुज.) : १७ से २० मार्च। संत श्री आसारामजी आश्रम, सूरत में चार दिवसीय ध्यानयोग साधना शिविर संपन्न हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक प्रांतों से आये हुए हजारों-हजारों भक्तों को अपनी अनुभवसंपन्न वाणी में स्वस्थ, आनंदमय व अध्यात्ममय जीवन जीने की कुंजियाँ बताईं। १९ और २० मार्च को होली महोत्सव संपन्न हुआ। गंगाजल मिश्रित कर पलाश के फूलों का रंग बनाया गया था। कोई रासायनिक रंग नहीं किन्तु प्राकृतिक ढंग से, प्राकृतिक रंग से होली का यह रंगीला त्यौहार उत्साह-प्रसन्नता भरे

वातावरण में संपन्न हुआ। भक्तों के विशाल जनसमुदाय का झूम उठना... नाचना... खुशी से हरि ॐ का गुंजन... पूज्यश्री द्वारा रंगों की बौछार... आहा ! स्मृतिमात्र से वह दृश्य आज भी आँखों के सामने नृत्य करने लगता है। सभी आनंदित... सभी खुशहाल... एक चिरस्मृति छोड़ते हुए आनंद- उल्लास का यह पर्व होली... 'हो' यानी होकर और 'ली' यानी चली... **होली के रंग, सद्गुरु के संग।**

केसूड़े के पुष्पों से बने हुए रंग में रँगकर गर्मी व प्रतिकूलता झेलने की शक्तियाँ विकसित करानेवाला होलिकोत्सव जिन्होंने वहाँ आकर विधिवत् ऋषि-पद्धति से मनाया वे प्रत्यक्ष लाभ लेनेवाले जानें। इसका वर्णन वे पुण्यात्मा नहीं कर पायेंगे। बस, अपने-अपने मित्रों व मिलनेवालों से कहेंगे : 'बहुत मजा आया... बहुत-बहुत अनुभव हुए।' माइयाँ कहेंगी : 'अरी ! क्या कहूँ ?' भाई कहेंगे : 'अरे भैया ! क्या कहूँ ? इस बार तो गजब का आनंद आया ! ध्यान में बापू भावसमाधि में बोलते थे और हम लोग भावविभोर हो जाते थे। वह कैसेट आप लोग जरूर देखना... जरूर सुनना।' केवल ऐसा ही कह पायेंगे।

[सूरत के होली शिविर का सेट पाँच वीडियो कैसेटों का है जिसमें उत्सव की कैसेट नंबर तीन है। जिनको भी ये कैसेटें चाहिए वे प्राप्त कर सकते हैं।]

दोंडाइचा (महा.) : २५ और २६ मार्च। धुलिया जिले के इस ग्राम में पूज्यश्री के सत्संग-प्रवचन संपन्न हुए। बड़ी संख्या में स्त्री-पुरुष, आबालवृद्धजनों ने सत्संगामृत का रसपान कर कृतकृत्यता का अनुभव किया।

दूर-दराज के गरीब इलाकों में जहाँ लोगों को १५ और २० रूपयों की भी मजदूरी उपलब्ध नहीं है ऐसे कई गरीब इलाकों में आश्रम के साधकों को भेजकर पूज्य बापू ने अपनी ओर से अन्न-वस्त्र, बर्तन व भोजन की सेवा करवाई और अलग-अलग गाँवों में जरूरतमंद लोगों के लिए मकान बनवा देने का कार्यक्रम भी चालू करवा दिया गया है।

याद रहे : इस निमित्त कोई भी व्यक्ति, आश्रम या समिति चंदा नहीं करेगी। यह पूज्य बापू की कड़ी आज्ञा है।

प्रभु के भंडार से यह कार्य संपन्न हो जायेगा। पूज्य बापू के नाम और आश्रम के नाम कभी कोई चंदा करे तो तुरंत अहमदाबाद आश्रम को सूचित करें। आश्रम में ऐसे बोर्ड तो साधकों ने पढ़े ही होंगे।

समिति ने अपनाया अनूठा तरीका

श्री यो. वे. से. समितियों ने पूज्य गुरुदेवश्री को अति व्यस्तता में भी अपने क्षेत्र में लाने का अनूठा तरीका अपनाया। २१ फरवरी से २ अप्रैल तक गुजरात व महाराष्ट्र के अनेक नगरों-महानगरों में लाखों लोगों ने पूज्यश्री की अनुभवसंपन्न वाणी से निःसृत सत्संगामृत का रसपान किया। अनूठा तरीका यह था कि समितियाँ प्रथम दो दिन पूज्यश्री के कृपापात्र शिष्यों का प्रवचन आयोजित करतीं व अंतिम दिन पूज्य गुरुदेवश्री का। थोड़े समय में अनेक स्थानों में सत्संग-प्रवचन संपन्न हुए।

संत श्री आसारामजी आश्रम, सूरत द्वारा संचालित 'साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र' में आयुर्वेदिक पद्धति से दँत-चिकित्सा विभाग का उद्घाटन दिनांक : १६-३-२००० को किया गया, जिसमें सड़े हुए तथा खराब दाँत जालंधरबंध योग पद्धति से क्षणमात्र में बिना दर्द निकाले जाते हैं। दाँतों के अन्य रोग संबंधी सलाह एवं चिकित्सा भी की जाती है। **समय :** हर माह के तीसरे गुरुवार को सुबह ९ से दोपहर १ बजे तक।

❊ ❊ ❊ कृपया सूरत आश्रम के नये फोन नंबर नोट कर लें : (०२६१) ७६५३४१, ७६७९३६. ❊ ❊ ❊

अन्य सत्संग-कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	समय	स्थान	संपर्क फोन
१२ से १५ अप्रैल	बुलंदशहर (उ. प्र.)	सत्संग प्रथम तीन दिन पू. श्री नारायण साँईं और श्री सुरेशानंदजी द्वारा	सुबह ९ से ११ शाम ४-३० से ६-३०	नुमाईश ग्राउण्ड, बुलंदशहर (उ. प्र.).	-
१५ से १८ अप्रैल	पानीपत (हरियाणा)	सत्संग प्रथम दिन श्री सुरेशानंदजी द्वारा	सुबह ९ से ११ शाम ४-३० से ६-३०	सेक्टर २५, आर-२, हुड्डा, पानीपत (हरियाणा).	(०१७४२) ६२२०२, ६०२०२.
२० से २३ अप्रैल	इलाहाबाद (उ. प्र.)	सत्संग प्रथम दिन श्री सुरेशानंदजी द्वारा	सुबह ९ से ११ शाम ५ से ७	परेड ग्राउण्ड, किला रोड, इलाहाबाद (उ. प्र.).	(०५३२) ५०५३१३, ६११५१८८, ६०२७५१
२३ से २७ अप्रैल २६ अप्रैल सुबह	लखनऊ (उ. प्र.)	सत्संग एवं पूज्यश्री का जन्म-महोत्सव प्रथम दो दिन श्री सुरेशानंदजी द्वारा विद्यार्थियों के लिए विशेष	सुबह ९ से ११ शाम ५ से ७	डी. ए. वी. कॉलेज, ऐश बाग रोड, इन्डोला नाका के पास, चार बाग, लखनऊ (उ. प्र.).	(०५२२) ४५३२०६, मो. ९८३९०१२८२३, मो. ९८३९०१९११५.

पूर्णिमा दर्शन : १८ अप्रैल २००० पानीपत (हरियाणा) में।

POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH. POSTING FROM MUMBAI 3, 8 & 15 OF EVERY MONTH. POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY

होली महोत्सव सूरत आश्रम

DELHI REGD. NO. DL-11513/2000 PSO LIC. NO. -U(C) 232/
R.N.I. NO. 48873/91 WPP LIC. NO. 207 GAMC/118
MUMBAI, BYCULLA PSO. LIC. NO. 03 REGD NO. MH/MW-

बापूजी ने होली रचाई तापी नदी के तीर, मन हर लीन्हों चित्त न धरे धीर।
पिचकारी से छिड़का बापूजी ने आत्ममस्ती का नीर, अब जागे भाग्य हमारे और जागी है तकदीर ॥

होली के ध्यान योग शिविर में पूज्यश्री की अमृतवाणी का रसपान करता हुआ भक्त समुदाय।